

घराऊघटना

अर्थात्

दस घराऊ घटनाओं के अपूर्व दृश्य

श्री झगड़ूलाल के मित्र

शहर दरभंगानिवासी श्री भुवनेश्वर मिश्र ने बड़े परिश्रम से सज्जनों के चित्तानन्दार्थ इस अमूल्य पुस्तक की रचना की

चौथीवार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपी

[illegible]

निवेदन

[illegible] क विख्यात साप्ताहिक पत्र हिन्दी
[illegible] के सम्पादकीय कामों में तत्पर रहने
[illegible]मय इस पुस्तक के दूसरे खण्ड में प्रका-
[illegible] तीनों लेख मेरे द्वारा प्रकाशित हुए थे।
[illegible] उन लेखों से अनेक पाठकों की
[illegible] के कारण प्रथम खण्ड में प्रका-
[illegible]तों लेख भी तयार किये गये। उन
[illegible] और इन नये लेखों को एक जगह देख-
कर पाठक लोग प्रसन्न होंगे और फिर भी भेंट
करने के लिये मुझे उत्साह देंगे यही मेरा
निवेदन है।

मिश्र टोला, दरभंगा
ति० सावन वदी ३ या सं० १९५० } { श्री भुवने[illegible] मिश्र

श्रीगणेशायनमः ॥

घराऊ घटना ॥

उपक्रमणिका ॥

ता० १९ वीं मार्च सन् १८९३ ई०, रोज़ एतवार, वक्त ३ बजे दिनको, मैं हवा खाने निकला, ज्योंहीं आंगन से दरवाजे पर आ रहाथा कि भीतरसे आवाज़ आई।

"तो थोड़ीही दूर से लौट आइयेगा, जल्द आइयेगा।" यह जुमला सुनतेही मुझे बहुतसी बातें याद आगईं, आगे पीछे सब सूझने लगे, इसी सोचमें मैं चल चला, किधर चला, क्यों चला सो सब कुछ न ख़याल रहा। जाते जाते बहुतदूर निकल गया। मोलझन पाव भर ज़मीन मैं चला गया, तब झपकी खुली, देखें तो आह वा! कितनी दूर निकल आया! डर होने लगा, हुक्म था "थोड़ीही दूरसे लौट आइयेगा।" कहना नहीं होगा, मैं वहीं से लौटा, तब तक चार बजगयाथा।

घर के पास पहुंचते पहुंचते पांच भी बजा। मतुआ तलाव के मोर पर पहुंचने से मालूम हुआ कि मोर की उस तरफ़ पांच सात आदमी बातें कररहे हैं। नज़दीक आने से बातें साफ़ सुन पड़ने लगीं। एकने कहा "भला झगड़ूको भी क्या सूझी।" गौर करने से मालूम हुआ यह केशोसिंहकी बोली थी।

कन्हैया की भी आवाज़ पाई उसने कहा "अजी रुपए ऐसीही चीज़ है।" कन्हैया बाँकेलाल सोखतार का लाईद है॥

उसी वक़्त देवीदयाल बोला "वाह, पेशकार हुये तो क्या कहीं के नवाब होगये "मैं तो उनके मुहँ पर कहूंगा।"

देवीदयाल मेरे महल्ले में एक फ़ज़ूल आदमी है। काम काज कुछ करता नहीं, पढ़ा लिखा भी ऐसाही वैसा है। पर अपने को बड़ा उचित वक्ता और इन्साफ़वर समझता है। सब से लड़ता झगड़ता रहताहै। जब इसने कहा कि मैं उनके मुहँ पर कहूंगा।" तो मैंने भी अपने मन में कहा कि अब चल के सुनही लेना चाहिये कि ये लोग मेरी क्या शिकायत कर रहे हैं। झट पट आगे बढ़के देखा तो इनके साथ हलधर खत्री और मेरे उपरोहित धनपत दुबे भी चलेजाते हैं। इन सबसे मुझसे कुछ ज्यादे बात चीत रहती है।

मुझपर दुबेजी का नज़र सबसे पहिले पड़ा, बोलउठे "आइये पेशकार साहब, आइये पेशकार साहब! आपही की तो चर्चा होतीथी। आप लाखबरस जीयेंगे।"

मैं। "परनाम, परनाम, कहिये क्या चर्चा होतीथी?"

अब तो सब कोई मेरी तरफ़ मुख़ातिब हुये। सब एक दूसरे का मुहँ देखने लगे। देवीदयाल कुछ ज्यादे सकपकाना। आख़िर को केशोसिंह ने कहा "न, और तो कुछ नहीं। वही आपने जे लिक्खाहै कि न, उसीकी चर्चा होतीथी।"

मैं। "क्या लिखाहै?"

केश्योसिंह। "अरे वही हिन्दी बंगवासी में जो चूंदसीवाली बात लिखी है कि न, सोही।"

मैं (कुछ मुसकुराता हुआ)। "सो क्या चर्चा होतीथी— देवीदयाल?

देवीदयाल (सकपकानासा)"न, चर्चा क्यों होगी, क्या पढ़ियों तो लिखा गया है; तब ठहरा यह कि दो एक आदमी कहतेहैं कि अपने घरकी बात—" देवीदयाल की जबान से और कुछ न निकल सकी। मैं (केशोसिंह की तरफ़ देखके) "इसमें हर्जही क्या हुआ?

कहने वाले बेवकूफ़ हैं।"

केशोसिंह (चेहरे पर कुछ साहस दिखलाकर)। "तो मैं एक बात कहूं, ज़रूरतही क्या थी?"

मैं (कन्हैया की तरफ़ देखके और मुसकुराता हुआ बाईं आंख ज़रा दबा के)। "खाई भली कि माई भली? कहो जी कन्हैयालाल?"

कन्हैया (उत्साह के साथ)"हां पेशकार साहब; असली बात तो योंही है।"

केशोसिंह।"तब किताबही छपादीजिये लेकरके—काहेको"—

केशोसिंह ने यह बात कुछ रंजके साथ कही, उसे सुनकर देवीदयाल का चेहरा फिर प्रफुल्लित मालूम होने लगा; परन्तु हलधरने बड़ी गम्भीरताके साथ जवाब दिया।

"हां मेरी भी योंही राय है, किताब खूब बिकेगी।"

हलधर की बात सुनकर केशोसिंह का मुहँ और लाल हो-गया पर मैंने सम्भाल लिया—

"भला कहो तो! हिंदी—बङ्गवासी में छपा है इसपर तो बाबू केशोलाल इतना रंजहोरहे हैं, और जब किताब छपैगी तब तो बाबू साहब न जाने मुझे क्या कह बैठेंगे।"

केशोसिंह स्वभाव का बहुत अच्छा आदमी है पर उसमें

दोष एक यही है कि वह बाबू कहलाने के लिये मरता रहता है। उसकी ज़मीन्दारी बहुत छोटी है, इसलिये उसे बाबू बनने का शौक बहुतही बड़ा है। क़िस्सा मशहूर है कि एकबार अपने ही महल्ले का एक चोर उसके घरमें पैठा। केशोसिंह जागा, चोरने यह समझ लिया। अपनी बोली बदलके चोर ने कहा 'यह! आज क्या है! आज तो बड़े बाबू साहब की हवेली में आये हैं। बहुत दिनसे नाम सुनते थे। केशोसिंह इस पर इतना खुश हुआ कि उसने चोर को छोड़ दिया, सो मैंने जो उसे बाबू केशोलाल और बाबू साहब कहा सो वह आस्मान पर चढ़ गया, हँसता हुआ बोला।

"नहीं, मैं रंज क्यों होने चला रंज क्यों होऊंगा—"

मेरे उपरोहित इस समय अपने यजमान की सहायता को पहुँचे, बोले "आदुर कीजिये इस बात को, जाने दीजिये, हुआ। कहिये कुछ कचहरी का गप शप कहिये।"

ये सब बातें रास्ते रास्ते हुई, इसलिये इस तरह हम लोग महल्ले में पहुँच गये। सब लोग अपने अपने घर गये, सब के मनमें सब तरह की बात थी पर मेरे मन में सिर्फ हलधर की बात चुभी—रही।

"किताब खूब बिकेगी।"

तो अब देखा चाहिये।

घराऊघटना पहिला खण्ड ॥

पहिली घटना।

पहिली रात।

पहिला अध्याय।

अच्छा, आप लोगों का भी तो व्याह गौना हुआ है, आप लोग भी तो जोरू जाते वाले हैं, आपही लोग कहिये तो कि पहिली रातके लिये तबीयत कैसी लगी रहती है? आप लोगों ने आरज़ू मिन्नत नहीं की थी? आप लोगों को खुशामद करनी न पड़ी थी? —— तब एक मैं ही क्यों बदनाम होता हूं? चार दिन की बात है कि मैं किसी वजह से रंज होके तमक कर घर से निकला और सीधे बाहर दरवाजे पर आ रहा था कि इसी में उसने उधर से कहा "ऐदाई! आज किसी को कितनीही इज्जत होवे, एक दिन मेरीही खुशामद करते रात बीती थी।" सुनतेही तो मैं भीतर से जल गया। लोहू घोंटके रहगया। भला ऐसी ऐसी बातें भी दाई मजदूरिन के सामने कहीं जाती हैं? आप लोग भी सुनेंगे तो कहेंगे कि पढ़ लिखकेभी कमबख्त जन मुरीदही रहा, लेकिन मुझसे बिलकुल बातें सुन लीजिये तब कुछ मेरे बारे में बुरी राय कीजियेगा। हकीकतमें जो बात हुई थी, सो मैं कह देताहूं।

बेबापके लड़के का व्याह जितना जल्द होताहै, सो आप लोगों को मालूमही है। सोलह बरसकी उमर तक मैं योंही रह गया। मुझे तो इस के लिये उतनी तरद्दुद न थी, पर मेरी मां दिन रात इस के लिये मरती रहती थी। जो कोई मेरे आंगन

में आते उसे वह यही कहती थी "बबुआ के माथे मौर देखलूं तो मुझे कुछहो।" इसी अवसर पर मेरे ससुर जी लड़का खोजते खोजते पहुंचे। मेरी मां ने न कुछ बूझा न कुछ सूझा झट पट बात पक्की करदी। दोही महीने के अन्दर तिलक व्याह सबसे फुरसत होगई। पंडितजी की एकही बात मुझे यादहै; उन्होंने कहाथा "हमार लड़किनियां के तईं दसवें बरीस नूवा।" मेरे गौनेके पहिलेही पण्डितजी राही हुये। व्याहसे ठीक सादेचार बरस पर मेरा गौना हुआ।

गौने के वक्त मेरा इक्कीसवां बरस था और उसका पन्द्रहवां; परन्तु उस वक्त तक मैंने उससे कभी दो बातें न की थीं —— बात चीत कहां से हो, देखा देखी भी न हुई थी। मैं यह भी न जानताथा कि वह गोरी है कि काली, नाटी कि लम्बी। व्याहके समय और गौने में वह मेरे सामने तो आई थी कई बार, पर सिर झुकाये, घूंघट गिराये और वदन सुकड़ाये रहने के कारण मैं उसे देख न सका था —— और देखताही कैसे? देखने का मजाल था? जरासा उस तरफ़ नजर गड़ाते तो? झट से कोई आई माई कह उठती "ए बाबा! वर कलयुगाहवा!" सो डरसे मैं खुदभी सिर नीचेही किये था। परन्तु गौने में डोली पर चढ़ने के समय मेरे साथ आने में अपनी ना मञ्जूरी दिखाने के अभिप्रायसे जब उसने घूमकर कुछ कुछ वे हवासी के साथ अपनी मांकी गरदन पकड़ली तब मैंने देख लिया कि वह नाटी नहीं है। और जब सब बात कहताही हूं तो यही क्यों छिपा रक्खूं, उसी समय मैंने जरासा उसका मुंह भी देख लिया था। आंख! उस वक्तकी अपनी खुशी की मैं कौन बात कहूं। इस वक्तभी याद पड़ता है तो कहता हूं या भगवान्!

एक बात कहने को भूल गया। गौना होने के पहिलेही मैं पढ़ना लिखना समाप्त करके कचहरी आने जाने लगा था और बड़ी बड़ी कोशिश से एक नौकरी भी मिल गई थी।

नौकरी बुरी नहीं थी। मुशाहरा तो थोड़ाही था २०) रुपया, पर याफ्तनी अच्छी थी। सब मिलाके महीने में सत्तर पचत्तर के करीब पड़जाता था। सरिश्तेदार साहब के इक्केवान का मुशाहरा और घोड़ेका खर्च मेरे ही इलाके थे, इसलिये सरिश्तेदार साहब भी मुझसे खुश रहा करते थे। अलबत्ते इससे दो एक अमले मुझसे जलते भी थे; पर मैं उनका कुछ परवाह नहीं रखता था—जाको पिया चाहै वही सोहागिन। पेशकारी गौने के डेढ़ बरस बाद मिली।

लेकिन साहब क्या कहूं, जिस समय मैंने वह मुह देखा उस समय मुझे इन सबमेंसे एक भी बातकी सुध न रही। यही जीमें होता था कि कब घर पहुँचूंगा, कब रात होगी। रास्ते में सुस्ताने के लिये जब कहार लोग कुछ बैठजायँ तो तबीयत में हो कि ये शैतान मेरे बड़े भारी दुश्मन हैं रेलपर रुखसती कराके लेजाता तो अच्छा होता। लेकिन अब तो जो होना था सो होगया; कुछ अखतियार न रहा। खैर ऐसेही सोचता झखता साढ़े आठ बजे रात को घर पहुंचा। गृहप्रवेश के बखेड़ेमें भी करीब एक घण्टा लगा। महल्ले भरकी औरतें वहां मौजूद थीं हजारों तरह की रीत बीत हुई; कन्या का मुह देखने को सबही झटपट कर रही थीं, इन्हीं रीत बीतों में मैंने उसका हाथ भी देखा, गोया कटे पर नमक छिड़कगया——गोरा हाथ दिलमें गड़ गया। मेरी बेसब्री और बढ़ गई। समय और भी भार मालूम होने लगा।

इस बेले मेरी मांको तो कुछ पूछिये मत। मारे खुशी के उसका पांव जमीन पर न पड़ता था, क्या होताहै और क्या होगा सो सब बातों की उसे कुछ नहीं खबर थी, इधर से उधर और उधर से इधर दौड़ती थी। मेरी बहन काम काज में फँसी थी। और आई माई जो आई थीं सो तमाशा देख रही थीं। मैंने तजवीज किया कि ऐसे होते होते तो समूची रात बीतेगी, सो अपनी बहनसे कहा "दीदी! इन सब कामों से जल्द छुट्टी करो, फिर

भाइयों को खिलाना भी है। " मैंने तो समझाया कि मेरा अभिप्राय कोई समझ न सकेगा, पर खगजाने खगही की भाषा, गोपाल की भौजाई उधर से हँसके बोलीं "झगड़ू बौआ! काहे घबड़ाते हैं, आज तो कुछ होगा भी नहीं। इस पर तीन चार औरतें हँस पड़ीं लेकिन केशो की बहन यमुना ने बाई आंख मेरी स्त्री की तरफ तान के और सिर बाई ओर से दहिनी ओर ऊपरसे नीचे करके बोली "हँह! बड़े स्थानकी जो हैं इसलिये।" तब लड़की ज्वान बूढ़ी सबसे दोस्ती रखनेवाली जगमोहन की बूढ़ी मां आगे बढ़के मेरी स्त्री का सिर पकड़ के बोली "सो क्या, फिर कैसीही है तो पण्डितकी बेटी है।" और मेरी स्त्रीकेकान के नजदीक मुंह लेजाके बोलीं "बचा! देखना! मां बाप का नाम मत हँसाना!" अब तो सबकोई हँसने लगीं, मेरी मां की खुशी और दूनी होगई। इस पर उसकी असिस्टण्ट मेरी दाई ने मेरी बहन से कहा "हे दैयो! से का चोरी छिप्पी के बा, चुप चुप काहे?" तब तो मेरी मां घबड़ानी, बोली "झूठ तो न, झूठ तो न, किसी छौंड़ी के मुहमें बकार है!" बस जगमोहनकी मां ले उठी—

"राम सिया घर आये हैं, मंगल मंगल॥
मंगल कहत सबलोग पुरजन नारिनर मारग खड़े।
रनिवास रानि हुलास सुखमह और कछुनहिं लखपड़े॥

मर! तुमसब संग न देओगी तो मैंही अकेले कहांतक ओ-ढूंगी" किन्तु जगमोहनकी मांका क्रोध इतनाही रहा। सब रीत रस्म समाप्त होजाने के कारण बिधकरी भुग्गुलकी फूफी बोली "अबहोगया, दुलहा दुलहिन को घरमें लेजाके बैठा देओ और गांठ खोल देओ" मैं खुशी होके घरमें ज्योंही चला कि मेरी बूढ़ी कासस्वासी चचानी खांसते खांसते गाने लगीं।

आजमेरी आजसिमेरी—आनन्द बधाई है सखिआजसिमेरी॥

किन्तु इतनेमें तो गांठही खुलगई; मैं दरवाजे पर भाग

भागा, उन के खरज का तान सुनने न पाये। ॥ ७ ॥

पर वेलोग करीब एक घण्टे तक गीत गाती रहीं। उसके बाद भाई लोग भोजन करने आये, उनके बाद हम लोगों की बारी हुई। तब नौकरों की विजय हुई। आखिर में दाई माई लोगों का आसन जमा। इन्हीं सब लटाखाओं में दो ढाई बज गया। मैं दरवाजे पर मुह छिपाये इन्तिजार पड़ा था, जरासा कुछ खुरखुर करे तो शुभा हो कि दाई बुलाने आई, आखिर में दाई आई। उसे देखते ही मैं पांव फैलाके बड़े वेग से श्वास लेने लगा, गोया गाढ़ी नींद में सोगया। मेरी रंगीन चादर से दाई ने मुझे पहचाना। नज़दीक आके बड़ी मीठी आवाज़ से बोली "बउआ!" मैं श्वास लेताही रहा।

"झगड़ू बउआ! झगड़ू बउआ!"

मैं। "उ ऊँ ऊँ-ऊँ-"

दूसरा अध्याय।

आखिर को मैं उठके खड़ाहुआ; दाई बोली "देखो बोलारलि-त"। सुनकेमें धीरे धीरे "कलुक अलसात सरसात सकुचात कछु" भीतर चला। ड्योढ़ी के पास भीतर मेरी बहन खड़ीथी। उसे देखतेही मैंने कहा "ऊँह! इत्ती रातको क्या है? जरा सोने भी नहीं पाते हैं।" मेरी जबान से इतना निकलना था कि मेरी बहन ने मेरा हाथ थाम्हकर आंगन की तरफ खींचा और दाई मेरे पीछे खड़ी होगई-गोया मैं दो सिपाहियों की हवालात में पड़ गया। बहन बोली "आ घर में न सूतोगे?" मैं। मैं ठेंढ़ी में सूतुंगा। (यह आवाज गोया मेरीनाक से निक-ली) बहन। भला कहो तो! आज बरस दिनका दिन है। चलो, कोहबर सूना रहेगा?

मैं । उँ ह—ओओंह—छोड़देओ—मैं न सूतूंगा ।
बहन । चलो न तो मैं मा से कह दूंगी,

इस प्रकार कहते सुनते मुझे कोहबर-घरमें ले जाकर मेरी बहन झट से बाहर निकल आई और उसकी किवाड़ी बाहर से सींचली मैंने भी भीतर से किल्ली ठोकदी । फिर कर मैंने पलंग की ओर देखा । पलंग सजा सजाया, पर सूनाथा । उसके पासही नीचे शतरंजी बिछी थी, उसीपर मैंने अपनी श्रीमती को बैठी देखा । मैं पलंग की ओर चला ।

उस समय मेरी तबीयत कैसी थी सो आप लोग समझ सके हैं ? मैंने उसे कभी नहीं देखा था, तौभी वह मेरी प्रियतमा प्राणेश्वरी होचुकी थी । गौना होनेके घटसे घट एक बरस पहिले से मैं दिन रात उसी की चिन्ता किया करता था । जब दोस्तों के साथ बैठता था तब किसी न किसी तरह से उसकी चर्चा होही जाती थी । मैं जो काम करता था सब में उसका लेहाज कर लेता था । पहिली मुलाकात के बारे में भी हजारों तरह का ख्याल कर चुका था । ऐसे घरमें जाऊंगा । ऐसे बैठूंगा, ऐसे उसे प्यार करूंगा । ऐसे उससे बातें करूंगा इत्यादि इत्यादि बातें सब रोज नई तरह से सोचा करता था । अब उसी पहिली मुलाकात का वक्त पहुंचा था । कहिये तो इस समय मेरे चित्त की क्या दशा थी ?

जो लोग काव्य उपन्यास बहुत पढ़ते हैं वे अवश्य कहेंगे कि मैं अचेत होकर गिरगया । वा बेहोशी के साथ उसके बदन में लिपट गया, दुनिया की मुझे कुछ खबर नहीं रही । परन्तु जिन लोगों का ब्याह गवना होगया है वे अवश्य कहेंगे कि इन सब में से एक भी काम नहीं किया होगा । बड़ी सावधानी से मैं पलंगपर जा बैठा । कुछ देर तक वहां चुपचाप सोरहा; पर नींद काहे को आवे । और मेरी भी ख्वाहिश सोने की नहीं थी । जब मुझे कुछ देरमें विश्वास होगया कि बहन और दाई

दोनों चौकठ से दूर चली गई और मेरी कार्रवाई देखने सुनने के लिये बाहर कोई छिपी नहीं है तबमैं उठके बैठगया। कलेजा धड़ धड़ करने लगा। हाथ कांपने लगा। वहां पर आईना नहीं था इसलिये अपने चेहरे का रंग नहीं कह सक्ताहूं। गोया खून करने को मैंने हाथ बढ़ाया, उसका घूंघट आहिस्ते से उठा दिया।

पलंग पूरब सिरहाने रखा हुआ था और वह उससे दक्खिन तरफ़ पच्छिम मुह बैठीथी। वह अपना सिर घुटनेके ऊपर दिये, घुट्टी तक लटकते घूंघट से छिपाये बैठीथी। ज्योंही मैंने उस का घूंघट उठाया कि वह झटसे घूमकर मेरी ओर पीठकरके दक्खिन मुह बैठ गई और घूंघट फिर साबिक़ बदस्तूर गिरगया। मैं अकचका गया। मेरा सब खयाली पोलाव जल गया। उस मल्के जरीपोश के लिये गोया मैं कमरतक मोमी गाछमें फँस गया, कोई रहीम खाजाखिजर भी नजर नहीं आता था।

थोड़ी देरके बाद फिर हिम्मत करके मैंने एक बार और भी हाथ बढ़ाया और घूंघट उठा दिया। इस बार वह घूमी नहीं सिर्फ घूंघट खींचकर ज्योंकी त्यों बैठी रही। मुझे इससे कुछ साहस हुआ, फिर घूंघट उठाया। निदान मैं दो तीन बार घूंघट उठाता गया और वह गिराती गई। साथही साथ वह मुझसे कुछ दूरभी घसकती गई। पर मैंने तब तक उसका चेहरा नहीं देखने पाया था। जब वह पलंग से इतनी दूरपर जा बैठी कि मैं पलंगपरसे उस तक्र पहुंच नहीं सक्ताथा। तब मैं नीचे उतरा। एक दम उसके बदन में सटके बैठा। फिर बायें हाथसे घूंघट उठाकर दहिने हाथ में उसकी टुड्डी पकड़ली। मेरी उंगलियों की फुनगी उसके गालपर पड़ीं और तरत्थी उसकी टुड्डी के नीचे। पर ज्योंही मैं उसका मुह अपने मुहकी ओर करना चाहता था कि उसने अपना शिर नीचे यहां तक झुका लिया कि मेरा हाथ उसके घुटने और बदन के बीच पिचने लगा।

तब मैंने ठुड्डी तो छोड़दिया पर हाथ दूसरीही जगह रुकगया वह गोया पैंठ गई। पिछलकर मेरेहाथ से निकल गई और कुछ हटकर बैठी। खून पीने से शेर और खूंखार होता है। मुझे भी अधिक हिम्मत हुई। वहीं जाकर मैंने एक हाथ से पहिले उसके शिरपर का कपड़ा नीचे उतार दिया, फिर दोनों हाथों से उसका समूचा बदन ऐसे लिपटकर मजबूती से थाम्हा कि वह निकल नहीं सकी थी, पर उसने निकलने की कोशिश भी न की। तब मैंने अपना मुंह उसके मुंह के पास लेजाकर बड़े प्यार से कहा "मुझसे न बोलोगी ? एं ?"। उसने अपना मुंह फेर लिया और बोली "उहूं।" मैंने फिर अपना मुंह बढ़ाया और कहा "न' जरासा, सुनो, जरा–" इसका जवाब घरके बाहर से आया चौकठ के पास ही दाई बोली "अब भोर भईल, लोग सब आई, पहिले अंगने बहार ली ले।"

हम दोनों ने समझा कि यह मेरे उठने का इशारा है। हम दोनों उदास होगये, पर चारा क्या था ? झटपट उठकर बाहर चला आया। गोपाल की भौजाई की बात सच्ची हुई।

अच्छा, अब आप लोग कहिये इसमें मैंने क्या अन्याय किया ? क्या खुशामदकी ? क्या इसी लिये वह दाई मजदूरिनके सामने भी मुझे हलका बनायेगी ? अच्छा, हुआ सो हुआ अगर फिर वह इसी तरहसे पेश आवेगी तो मैं बूझलूंगा।

दूसरी घटना।

बरसाइत।

बैशाख में हुआ मेरा गौना, जेठ में पहुंची बरसाइत। मेरी मा का हुलास दूना चौगूना बढ़गया, तयारी पूरे तौर से होने लगी।

जबसे गौना होकर आया था किसी काम में जी नहीं लगता था, तबीयत कचहरी से भागे भागे हुई रहती थी। सदा यही लौ लगाये रहता था कि कब शत होगी। यार दोस्तों के सामने भी, अगर इस तरहकी बात चली तब तो घण्टा मिनट होजाता था, और नहीं तो फिर वही उदासी छाजाती थी। ऐसी अवस्था में यह सुनकर आप आश्चर्य नहीं मानेंगे कि एक दिन मैं कचहरीसे पांच बजेसे पहिलेही चला आया। दरवाजे पर उतरनेके साथ आंगनसे पांचसात औरतोंके गीत गाने की आवाज आई। पहिलेही मैंने अपना नाम सुना, इस लिये बाहरही बैठके सुनने लगा—

हे भैगद्दूलाल दुलहाकी धोतीया सूरूख रंगअ—
चादरअ सबूज रंगअ=
हे चमेली दुलहिन देखी खुशी अंगअ अंगअ—
छबीले पीय मेरे अजब रंगअ=

हे—

अब मुझसे रहा न गया। भला उसका और मेरा नाम एक साथ लिया जाय, तिसमें भी मैं दुलहा और वह दुलहिन कही जाय और मैं चुप चाप बैठा सुन सकूं? न मालूम क्यों, उसका नाम अपने नामके साथ सुनतेही मेरी तबीयत उमड़

उठी। हँसी रोके नहीं रुकती थी। दोनों ठोरोंको एक जगह द-बाकर चेहरा गमगीन बनाने की कोशिश में हद से ज्यादे क-रता था परन्तु वह काहेको माने, दोनों ठोर अलगही होजाते थे, दांत निकलही जाता था, चेहरेपर हँसी खुसी आही जातीथी एक जगह मुझे बैठा भी नहीं जाताथा—कभी यहां बैठें, फिर वहां बैठें पर स्थिर कहीं नहीं हो सक्ते थे। जीमें आगया कि जहां गीत हो रहाहै वहीं चलके देखूं कि क्यामाजरा है। पहि-लेही कह चुकाहूं कि मेरे नामके साथ-दुलाहिन का नाम सु-नतेही मैं आपमें न रहा, तब क्या आंगन जाने और न जाने की बातका बिचार मैं करसक्ता था? जीमें आ गया, मैं आंगन को चलचला। पर डेवढ़ीमें जाने पर मुझे मालूमहुआ कि चार पांच बाहरी औरतें भी आंगन में बैठी हैं। तब मुझे कुछ होश हुआ। अगर उन सबके सामने मैं हँसता जाऊंगा तो वे मुझे क्या कहेंगी? तमाम महल्ले में इसकी शोहरत हो जायगी, मेरी शिकायत सब लोग करने लगेंगे, पर इधर हँसी रुकतीभी नहीं थी। आखिरको मैंने आंख भौं चढ़ा लिया और चोटीली सांपिनीकी तरह नाक इधर उधर फुफकारता आंगन में गया। मुझे इस बे मौसिमी रंग में रंगा देखकर मेरी बहन झटसे मेरे पास आ गई।

जरा एक बात कहलूं। मेरे आंगन के पूरबवाले ओसारे पर, कोहबर-घरके ठीक बाहर मेरी मांके अलावे ४ और बूढ़ी औरतें बैठीथीं। इन पांचों के हाथ में एक एक डगरा था और एक वा दो मुट्ठी गेहूं लेकर ये सब उस डगरे में फटक झटकके फिर एक खाली दौरी में रखती जाती थीं। इनके हाथ तो यों काम कररहे थे और इनके मुंह गाने में लगे थे। ये सब इन कामों में ऐसे जी जान से पड़ी थीं कि मेरा आना इन लोगोंको मालूम नहीं हुआ। परन्तु मेरी बहन भी उसी जगह बैठी गा रही थी, उसने मुझे देखा, और मुझे बदरूप देखकर झटसे मेरे पास

चली आई। जबतक वह मुझसे कुछ पूछे तबतक मैंही ने उस से पूछ दिया। मुझे तो पूछने की जरूरत नहीं थी, परन्तु अपना गोस्सा अगर न सम्भालेरहूं तो बनाबनाया मकान गिरजाय।

मैंने झिड़कके कहा "दीदी! यह क्या वाहियात शोर गुल कर रहीहो? भला लोग भी सुनें तो क्या कहें, राम।"

मेरी वहन यह सुनतेही मेरे बहुत पास चली आई और जैसे कोई किसी को बहुत भारी गुप्त भेद कहने में चेहरा बनाता है वैसाही चेहरा बनाकर आहिस्ते से बोली "आह! आ बरसाइत को दिन कहां है?" सो भी पहिले वहिले की ठहरी!"

लोग कहते हैं कि बिजली की असर बहुत जल्द होती है। सुन्दर बनके पास रहनेवाले एक बंगाली ने मुझे कहाथा "पो-ण्डितजी मोहाशोय! आमरादेश में एक रकमका साप होते हैं ओनाका काटने से आदमी ताड़ा ताड़ी मोर जाताहै।" सुनते हैं विलायत में डिनामादर नामकी बारूद होती है, उसके पावभर के गोले में एक रुपये की भी चोटलगे तो पहाड़ के पहाड़ कड़-कड़ाके टूट फूट जाँय। परन्तु मैं समझताहूं कि मेरी बहनके इन दोनों वाक्यों की असर और शक्ति के सामने बिजली सांप और डिनामादर सब झख मारते हैं और किसी के लिये हो वा न हो पर मेरे लिये तो उस समय वैसाही हुआ। कितनी को-शिश से मैंने हँसी रोककर गोस्सा किया था, कितनी मेहनत से मैं खुले दांतों को छिपाकर मोंको गिरा सका था! सो सब उसकी बात सुनतेही मिट्टी में मिल गई। ओह! बरसाइत आ गई, मेरी श्रीमती बरसाइत करेंगी! कहिये यह कम खुशीकी बात थी? मैं तो समझताहूं कि अगर कचहरी में मुझपर कोई मुसीबत भी आई होती तो भी मैं यह खबर सुन कर खुश हुए बिना नहीं रह सक्ता, मेरे चेहरे पर हँसी आतेही मेरी बहन भी खुश होगई और बोली "अभी दरवाजेही पर रहो।" मैंने तब पूछा। ये सब क्या कर रही हैं?

बहन गेहुं छू रही है।"

अगर अब भी मैं वहां ठहरता तो जरूर खिलखिलाता उल्लू समझा जाता, तुरत बाहर चला आया।

यह सोमवारकी बातहै। बरसाइत हुई शुक्रवार को। पर जैसे जैसे शुक्रवार नजदीक आनेलगा वैसे वैसे गीत नाद धूम धाम और बढ़ने लगी। बृहस्पतिवारको चार बजे शाम से लेकर ६ बजे रात तक न मालूम कौन २ चीज पक रही थीं और गीतका बेहिसाब बौछाड़ छूट रहाथा। शुक्रवार को एक घण्टा रातबाकी रहतेही मेरीकोठरी केचौकठ पर न जाने किसने धक्कादिया मैं तो भीतर जागताही था, झटपट बाहर निकलआया—आंगन में बहन खड़ी थी, मैंने पूछा"क्याहै क्या"? वह बोली "अब पूजा न होगी।" दरवाजे पर आने में बीच आंगने में मुझे ठेस लगी, ऊंह ऊंह करके गिरपड़ा। फिर होश करके उठा, देखूं तो बड़ के पेड़की एक मोटीडाली गड़ी है, पूजा इसी की होने वाली थी।

उसी समयसे पूजे की तयारी होने लगी। मैं तो दरवाजेपर पड़ा था, क्या क्या तयारी होती थी सो कुछ समझनहीं सक्ता था, परन्तु कभी कभी अगर कोई कुछ जोर से बोले तो, सुनपड़े। नमूने के लिये उन सुने वाक्यों में से आप लोगों को दो चार सुना देताहूं—"आह! बड़ी देरी हुई, बुलौवेवाली सब आतीहोंगी।" "जाओ हे दुलहिन! तुम बड़ी सुस्त हो, कैसे—की बेटीहो।" "यह नहीं, वह सारी पहनो"। "जरा घूंघट और न नीचे करलो"। "आह जा! फूल तो अभी तक नहीं आया।" "अभी तक ठांव चौका भी न हुआ है।" इत्यादि इत्यादि।

मैं बाहर दरवाजे पर मुह छिपाये चुप चाप पर जगाही, सो रहाथा, और भीतर आंगन में ये तयारियां होरही थीं। मेरी मां, बहन और दाई, सबकी सब इन तयारियों में परेशान थीं। इसी अरसे में मालूम हुआ कि कोई औरत बाहरसे आरही है। जरा

सा मुँह खोलके देखा तो मालूम हुआ कि गोटेदार बैंजनी सारी के ऊपर पट्टेदार जालीलेट की चादर ओढ़े, डेढ़ हाथ घूंघट लटकाये सिरसे पैर तक इस प्रकार छिपी जल्द २ कदम बढ़ाती आंगन की तरफ चली आ रही है। उसके साथ साथ छोटी लड़की आगे आगे है। मैंने अपना मुँह फिर छिपा लिया कि वह भीतर चली जाय, पर जब वह नजदीक आई तो उसलड़की की के कान में झुकके कहने लगी "अब कैसे जायँ दरवाजे पर तो कोई सूता है?" बोली से मैंने पहचान लिया कि मनमोहन की मांकी सवारी आ रही है। लड़की ने भी उसी तरह जवाब दिया "आह! ऊ क्या देखने जायगा।" जगमोहन की मां फिर आगे बढ़ीं और उसी तरह मेरे सिर के पास से भीतर चली गईं। इसके बाद एक एक करके बहुत औरतों को आते देखकर मैं वहां से उठ गया। तब तक खिदमतगार ने मेरे नहाने की सब तयारी कर दी। मैं भी स्नानादि करने में प्रवृत्त हुआ।

मेरे स्नान करने का कोई नियम नहीं है। मैं कभी आठ बजे स्नान करताहूं, कभी नौबजे, कभी ठीक दसबजे, कभी जरा देह पोंछली और कभी सोभी नहीं करताहूं। परआज इतना सवेर स्नान करने का एक कारण था। मेरे घरमें पूजा पाठकी इतनी धूम थी, कौन जानता है किस वक्त कैसी जरूरत होगी? ऐसी अवस्था में मैं सब काम से फरागत किये अपना इलजाम बचाये रहूं सोही अच्छा। इसलिये जब खिदमतगारने (शायद दाई के इशारे से) इससमय मुझसे कहा "सरकार! नहायके सबकुछ तैयार था" तो मैं भी उचित समझकर उठ खड़ा हुआ।

जब तक मैं स्नान करता था, तबतक मेरा आंगन औरतों से भरगया। गौना हुए महीना नहीं पूराथा। इस लिये मैं रंगी नहीं धोती पहनताथा धोती बदलकर ज्योंही मैं जप करने की तयारी में था कि दाई दरवाजे पर आई, बोली "बौआ! माय

गोळापलिन।" स्नान करके बिना जप किये कहीं जाना तो उचित नहीं था, परन्तु सच पूछिये तो आज मेरा चित्त ठिकाने नहीं था। हजारों औरतों के बीचमें "वह" बनठनके बैठी होगी, "वही" सबके आंखके नीचे होगी, उसी के पास रहने को सब चाहती होंगी, सोही वह मुझे स्मरण करती होगी। कहिये ऐसी अवस्था में अगर मैं आंगन में जा सकूं और एक बार उसे देख सकूं और सब आई हुई औरतों को दिखला सकूं कि मैं ही उसका प्रिय स्वामीहूं और उन सब औरतों का चित्त एकबार अपनी ओर खींच सकूं तो क्या ऐसी वैसी बात होगी? और जब इसी काम के लिये मेरी बोलाहट हुई तो क्या किसी और काम के ऊपर चित्त लगाये रखना मेरे लिये उचित था? चूल्हे भाड़ में जाय जप तप नित्य कर्म्म, आज इस विशेष कर्म्म से तो पहले फुरसत करलूं। दाई को जवाब दिया "क्याहै क्या कि बोलाती हैं? जप भी नहीं करने पाया।" साथही खड़ाऊं पहनकर आंगन की ओर चलने लगा। आगे आगे दाई और पीछे पीछे मैं। डेवढ़ी में पहुंचने पर दाई बोली "हेदैयो! बोआ ठाढ़ बारन।"

दाई के इतना कहते देर नहीं कि उधर से मेरी बहन पहुंची, झटपट मेरे सिरपर ससुराली पगड़ी और कन्धे पर ससुराली चादर रखके मेरे पीछे खड़ी होगई और बोली "चलो, जल्द चलो, तुम्हारेही लिये सब काम बन्दहै।" किसी भिखमंगे को आज तक किसी ने झिड़ककर कर नहीं कहा है कि तुम्हें भरपेट शिरनी खानीही होगी और न किसी काले पानीवाले को कभी किसीने कहा है कि तुम्हें हँसते खेलते घर वापस जानाही होगा। पर, साहब! ईमान से कहताहूं मुझे उस घड़ी मेरी बहन ने कहाथा "चलो तुम्हें आंगन में जानाही होगा और गांठ जोड़कर बैठनाहीहोगा।" कहिये, मेरा अख्तियारही कहांतक कि नट जाऊं। पर तो भी गांठजोड़े जानेके समय मुंह कुछ चिढ़ासा

झ्‌ा कर कहा "आह! ऐसा तो कहीं नहीं होता है।" इतना कहना था कि मझली हट्टे का दरवाजा खुल गया: सब कोई कुछ न कुछ कहने लगीं, मेरी मां बड़े प्यारसे बोली "न बच्चा, जिद मत करो" एक दूसरी बूढ़ी सिर हिलाके बोली "भगवानकरे—

तीसरी। "तुम जीते जागते रहो—

चौथी। "दुलहिन एहवाती बनीरहे—

पाचवीं। "बरस दिनके दिनमें—

छठवीं। "ऐसा तो होना ही चाहिये—

इन सबकी बात सुनकर मैं पुलिससे गिरफतार किये जाते बे कसूर आदमी की तरह चेहरा बनाके शान्त होना चाहताथा कि उधरसे गोपालकी भौजाई बोलीं "हेएझगड़ू बौआ! हुआ, रहने दीजिये, कितना जनाइयेगा? ऊपर केहुनिथाघास नीचे गंगा बही!" केशोकी बहन यमुनाभी लगी हुई थी, गोपाल की भौजाई की ओर देखके बोली "हे भई! बहुत मत कहते जाओ, मेरी अलबेली भौजाई का घूँघट नीचे गिरा जाताहै।" इन सब बातों को सुनता मैं "उसकी" दहिनी तरफ बैठनाही चाहताथा कि सुफेदबाल इधरउधर उड़ते नजरआये, तजवीजकरकेदेखा तो जगमोहन की मा मालूम हुई। सबके ऊपर झिड़कके यह वृद्धबालिका बोलीं "दूरकरो, तुम सबको हँसी ठट्ठे से छुट्टी नहीं मिलती है। बेरा बीता जाता है तिसका खयाल ही नहीं है। और जुगुलकी फूफी को ओर देखके हाथ चमकाके बोलीं" हे इलायची! तुम अपना काम जल्द किये जाओ, मैं गातीहूं। इतना कहके ले उठीं

अलबेला दूलह दुलरुआ॥

सुन्दर सदन तामें कोठरी झिलमिलिया लागि रही।

हे हे मेरे दुलहे! लागि रही

भला मेरे बन्दरे! लागि रही

अलवेला दूलह दूलरुआ ॥ १ ॥
फूल बगीचा बाहरे फुलसेजिया भीतरही।
हं हं मेरे दुलहे ! भीतरही
भलामेरे बन्दरे ! भीतरही
अलवेला दूलह दूलरुआ ॥ २ ॥
लाल पलंग फूलसेजिया मुसहरिया झूमिरही।
हं हं मेरे दुलहे ! झूमि रही
भलामेरे बन्दरे ! झूमि रही
अलबेला दूलह दूलरुआ ॥ ३ ॥
गोरी तुनुक और पतली दुलहिनियां सो भी खड़ी,
हं हं मेरे दुलहे ! सो भी खड़ी
भलामेरे बन्दरे ! सो भी खड़ी
अलबेला दूलह दूलरुआ ॥ ४ ॥
मन्द पवन निस ऊजली रंगरलियां क्यों न करो,
हं हं मेरे दुलहे ! क्यों न करो
भलामेरे बन्दरे ! क्यों न करो
अलबेला दूलह दूलरुआ ॥ ५ ॥

जब तक जगमोहनकी मां और उनके साथ अन्यान्य लोग यह गीत गा रही थीं, तब तक उनकी इलायची उस बड़की डालपर "उसके" हाथ से फूल, अच्छत, हल्दी मिला हुआ चावल का गीला आंटा, पूरी इत्यादि रखवाती जाती थी। जब तक उधर गीत समाप्त हुआ तब तक इधर पूजा भी समाप्त हुई। पूजा समाप्त होतेही मेरेजाने का समय देखकर सब गाली गाने लगी—

सखीरी ! जैसे कदमकी डाली हरी हरी पतियां—
हरी हरी पतियां।
सम्भूनाथ पण्डित रसिया—जोरू भई मठिहारिन
हरी हरी पतियां

हरी हरी पथियां—

ऐसा कुल कमल मेंही हुआ हूं कि उस "के बापकी गालीसुनता रहूं? मैं वहां से भाग आया।

तीसरी घटना।

नैहरकी यात्रा।

कचहरी से लौटकर जरूरी कामों से छुट्टी करके जलखाने को मैं सन्ध्या समय भीतर जा रहा था कि पीछे एक आदमी ने कहा "बबुआ? परनाम।" फिर कर देखा तो ससुराल के हज्जाम को लटपटी पगड़ी, फटी चादर, मैली धोती, हाथ में लाठी और खाली पैर लिये मूर्तिमान् यमदूत की तरह खड़ा पाया। मेरे चेहरेपर नजर पड़तेही जैसे सलाम करे वैसेही दहिना हाथ उठाकर उसने कहा "परनाम, परनाम।"

मैं। नथुआ! है तो कुशल छेम?

नथुआ। जी सरकार।

मैं। कुलदीप बाबू हैं अच्छी तरह से?

नथुआ। जी सरकार।

मैं। आंगन में हैं सब कोई अच्छी तरह से?

नथुआ। जी सरकार।

मैं। गांव घरमें कोई नई बात हुई है?

नथुआ। नहीं सरकार।

मैं। चिट्ठी उट्ठी भी लाया है?

नथुआ। जी सरकार।

मैं। रखदे।

नथुआ ने कमर से चिट्ठी निकाली। मैं उसे पढ़ता हुआ आंगन चला गया। चिट्ठी बादामी कागजके एक टुकड़े पर स्याही से लिखी थी। पर यह स्याही काली नहीं थी, लाल नहींथी, पीली नहीं थी, उजली नहीं थी, किसी खास रंग की नहीं थी, थी एक विचित्र ही रंग की—उसका वर्णन मैं नहीं कर सक्ता हूं। इतनाही समझ लीजिये कि दरवाजे परसे भीतर आंगन में जाने तक मैं उसका कोई अक्षर नहीं देख सका;। आंगन की रोशनी में जाने से कुछ कुछ मालूम होने लगा। वहीं खड़ा होकर मैंने आधे घण्टे में उसे झटपट पढ़ लिया। चिट्ठी में यही लिखा था।

श्रीगणेशायनमः।

स्वस्ति श्री सकल मंगलालयषु झगड़ू लालेषू अत्र कुलदी, पस्य प्रणाम सतं कुशलञ्च अग्रे भाषायां—

आगे दीदी के गेला एक बरस होगईले से जानल जाई मायके जीऊ बहुत लागल बा से जानल जाई आम खूब फर ल बा से जानल जाई गाछी अटूट भेल बा से दीदी आई त बड़ा अच्छा होईसे जानल जाई दश दिनके लेल दीदी के आवे देल जाई से जानल जाई मायके बड़ा जीऊ लागल बा जरूर आवे दहेब से जानल जाई जेठ सुदी त्रितिया के हम अपने का दरसन देहव से जानल जाई चतुर्थी के रोकसदी होई से जानल जाई जरूर जरूर से जानल जाई मायके जीऊ लागल बा से जानल जाई दीदी आई त बड़ा अच्छा होई से जानल जाई इति शुभ—

"एक बंगाली दूसरे तोतराहा।" एक तो दिहाती जाहिल समाज की चिट्ठी दूसरे ११ बरसके लड़केकी लिखी। ऐसी चिट्ठी कहां तक जल्द पढ़ी जा सक्ती है सो आप स्वयं समझ सक्तेहैं। तिसपर नथुआ ने उसे अपनी कमर में इस मजबूती

से बाधा था कि कागज कपड़े से भी बढ़के मोलायम होगया था, खैर मैंने उसे किसी तरह पढ़ लिया और घरमें खाने गया, आगे में थाली आई और साथही प्रश्न किया गया "आंगन में कौन चीज पढ़ते थे?" मैंने जवाब दिया "एक चिट्ठी थी।"

वह। कहां की?

मैं। गजल पुरकी।

वह। कोई आया है।

मैं। हां. नथुआ।

वह (मुंह छिपाके, घूंघट गिराके और बड़े जोरसे) ऊं ऊं— उसे रोताही छोड़कर मैं बाहर चला आया। थोड़ी देरके बाद दाईआई, बोली "गजलपुरसे के आईलवा, अंगना में बोलाहट होईत बा।" नथुआ भीतर गया।

मेरा गौना हुये एक बरससे सचमुच अधिक हुआ था। इसी अरसे में मेरी बहन अपने ससुराल चली गई थी और मेरी मां मेरे पिताजी की सेवा करने चली गईथी। मेरी स्त्री मेरे गृह संसार की अद्वितीया अधीश्वरी हो अखण्ड राज्य करती थी यह महीना जेठकाथा और दो एक आम गिरने भी लगा था। इसीलिये मेरी सासने अपनी बेटी का स्मरण किया था। पर मैं अकेला आदमी ठहरा, उसे कैसे जाने देता? सो मैंने निश्चय कर लिया था कि चिट्ठी के उत्तर में वैसाही लिखूंगा। किन्तु जो मेरे भाग्यमें ऐसा बदा हो?

नथुआ बहुत देर तक आंगनमें रहा। उसशैताननें सबबातें उसे कहदी। चिट्ठी में तो केवल आमका फलना, मायका जी लगना, दीदीके रहने से अच्छा होना, दीदीका आना और सो जानना—येही पांच बातेंथीं। परन्तु नथुआने जबानी खबरभीतर यह पहुंचाई कि जब कोई पका आम आंगन में आता है तो माय रोदेतीहैं कहती हैं हाय! चमेलियारहती तो कितना खुश होती; जब माय गाछी जाती हैं और पेड़में आम लगे देखती

हैं तो रो देती हैं कहती हैं हाय! चमेलिया रहती तो कितना खुशहोती; जब रातको माय खाने बैठती हैं तो रोदेती है कहती है हाय! चमेलिया रहती तो कितना खुशहोती; जब माय किसी के आंगन जातीहैं तो रोदेती हैं कहती हैं हाय! चमेलिया रहती तो कितना खुश होती, इत्यादि इत्यादि गरज कि बात बात में माय रो देती हैं कहती हैं हाय! चमेलिया रहती तो कितना खुशहोती, इन सब बातों की असर मेरी श्रीमती के चित्तपर पूरे तौरसे हुई।

रातको जब मैं भोजन करने को जाताथा तो दाई एक लोटा पानी आगे लाके रख देती थी, मैं उससे पांव धोकर चौके पर जाता था वहां दाई पहिलेही से सब सामान ठीककिये रहती थी "वह" सिर्फ थाली सामने रखके चलीजातीथी और मैं भोजन करलेता था। परंतु आजका मामला दूसराही देखा। आंगनमें जानेके साथही देखा कि स्वयं महारानी साहिबालोटे में पानी लिये खड़ी हैं। मैंने चाहा कि उसके हाथसे लोटा लेकर पांव धोऊं कि वह लोटा लिये झुक गई और बोली "न आज मैंहीं धोदूंगी, न आज मैंहीं"। फिर जबमैं चौके पर गया तो वह थाली रखकर सामने बैठ गई और हाथ में पंखा लेकर डुलाने लगी, बेमामूल काम देखकर मुझे कुछ आश्चर्यसा हुआ। उसके चेहरे पर देखा, अपने मनकी फांसी की लकड़ी वहां खड़ी पाया।

गौना होने के बाद कुछ दिनों तक वह मुझसे बहुत शरमाती थी। आगे जैसे जैसे उसकी लज्जा छूटने लगी वैसे वैसे वह मुझसे अधिक बेतकल्लुफ होने लगी। कभी उसने कसदन किसी तरह का नाज नखरा नहीं दिखलाया था और मैं भी उसे साधारण पतिव्रता समझकर बहुत प्यारकरने लगा था। सच कहतेहैं कि आज तक मैंने उसकी विद्या नहीं देखी थी। पर आज का मामलाही कुछ और था। समूचा मुंह खुलारहने

पर भी शरमके घूंघटमें छिपा और भीतर ही भीतर हँसता मालूमहुआ। मेरे कुछ टेढ़ी, और आँख एक एक सेकेण्डमें सौवार मेरे मुंहकी तरफ देखती है और सौवार मिट्टीकी तरफ देखती है और उसके साथही दांतभी खुल जाताहै और छिप जाता है। बायें हाथसे बायें पैरका अंगूठा छू रही थी और दहिने हाथसे पंखा इस तरह डोला रही थी कि मालूम होताथा कोई निर्जीव स्टीमकल के द्वारा वह इधर उधर घूम रहा है। सिरपर का कपड़ा धीरे धीरे नीचे गिरा जाताथा और आंचल आधा गिर गया था। मुझे तो पूरा विश्वासहै कि नारदजीको कौन पूछे अगर श्री शुकदेवजी भी वहां रहते तो लँगोटी छोड़ धोती पहनते और भस्म छोड़ फुलेल लगाते, पर मुझे तो न लँगोटी थी, न राख। तन छोड़ मन उसके समर्प्पण करदिया।

थोड़ी देरतक ऐसाही हाव भाव होतारहा। मैं छन छन बेबस होरहा था। आखिर को उसने मुँहपर कुछ हँसी जाहिर करके कहा "नथुआ क्या आया है?"

अगर मैं अपने होश में होता तो कुछ औरही उत्तर देता, परन्तु मेरी उस समय की दशा तो आप को मालूमही है, शायद जवाब दिया "चिट्ठी लेकर आया है।"

वह (उसी मनमोहिनी भावसे)। "चिट्ठी में क्या है?"

मैं (वैसीही बेखबरी से)। "रुखसती के लिये—"

वह। "तो कब जाना होगा?"

मेरी भकी छूट गई। समझने लगा कि मेरा पांव रेलगाड़ी के फुटबोर्ड पर पहुंच गया, अगर सावधानी से न रहूंगा तो जरूर दबकर कष्ट उठाना पड़ेगा। जवाब दिया "जाना ऊना न होगा।" वह (कुछ आँख तिरछी करके) "एह! सो जायँगे न काहे?"

मैं। तो यहां कौन रहेगा?

वह। आ आप न हैं?

मैं। मैं अकेला रहके क्या करूंगा ?

वह। तो मैं रहकर क्या करूंगी ?

मैं सब कुछ

वह। हूं अं ! सब कुछ, तअ !

इस समय तो बात इतनी ही रही पर जब रातको मैं सोने गया तो फिर चर्चा हुई। मैं पहिलेही पलंग पर पड़रहा। वह पीछे मेरेपेट के पास पीठ करके बैठी और मेरेशरीरको तकिया समझ कर उसी पर लेट गई। बांये हाथसे मेरी कमर थाम्हकर और दहिना हाथ मेरेपीठपर होकर मेरे सिरपर रखकर बड़े नाज से नाकिया के बोली"हं,सोगये अँम न, "और फिर मेरे बदन पर सोकर मेरेगालपर अपना गाल रखकर बोली "मैं भी सो रहती हूं'जाइये' मैंने इसका क्याजवाब दिया सो भी लिखें मैं न, आपमनहीमन समझ जाइये। वह बोली " और जब ? नैहर रहूंगी तब। तब क्या होगा ?"

मैं। न नैहर जाओगी और न कुछ होगा।

इतना सुनतेही वह मेरे बदन में और भी लिपट गई " न, मैं जाउंगी, चारही दिन रहूंगी, अँ, अँम न–"

रातको बारह बजते बजते मैंने कबूल कर लिया कि रुखसती होगी, पर किन्तु चतुर्थी को नहीं, सप्तमीको । नथुआ अपना काम कर "जी सरकार" कहता चला गया। रुखसती भी निश्चित दिन के हो गई।

चौथी घटना।

बेली फूल।

कचहरी के अन्य अमलों के साथ रहते रहते मुझे एकबुरी आदत हो गई है। कहना तो न चाहिये, जात बेरादार सुनेंगे तो शायद कुछ बखेड़ा निकालेंगे, परन्तु जब घरकी सब बातें कह रहा हूं तो एक यही क्यों छिपा रखूं? मैं तम्बाकू पीता हूं। दिन को और रातको भोजन करलेने के बाद घरमें बैठ कर चुपचाप दो चार दम खींच लेता हूं। गुड़गुड़ी नहीं रखता हूं, एक बढ़िया कलकतिया नारियल से काम निकाल लेता हूं। महल्ले भरमें अभी तक किसीपर यह बात जाहिर नहीं है।

एक दिन कचहरी बन्द थी। शायद साढ़े ग्यारह बजगया था। मैं तुरतही भोजन करके घरमें लेटना चाहताथा, नारियल तयार करके उसी समय मेरे हाथ में दिया गया था। एकही दम खींचा था। मूड़ूड़ू अभीतक घरसे बाहर नहीं पहुंची थी कि आँगन से दाई बोल उठी "दुलहिन! देखीं त, के आईल-वारन,, और फिर "हे चम्पा देयो! हो हे बिछावनपर बेठीं न दुलहिन आवलिन।" सुनतेही मेरा चेहरा फक होगया, ना-रियल हाथ से गिरने लगा, मैं उठ बैठा। मेरी श्रीमती कुछ कुछ हँसकर और दहिना हाथ उठाकर मेरी ओर इशारा करके बोली "चुप चाप रहिये चुपचाप रहिये, बेलीफूल आई हैं।"

एक रात किसी खास वजह से गूदर दुबे के यहां औरतों का जमावड़ा हुआथा। इसके करीब छे महीने बीते होंगे। वहां औरतें आपसमें 'हँसी दिल्लगी कर रही थीं। मेरी श्रीमती भी उसमें शरीक थीं। एकने इस की ओर इशारा करके कहा था

"हे भई! इनसे न बोलो, यह झगड़ा लगावेंगी।" यह सुनकर सब हँसने लगीं थीं और भिखारीलाल की स्त्री बोलींथीं "हं हं, इनसे कैसे बोलें, यह तो झगड़ेही के भरोसे जीती हैं।" पर इसका मुँहतोड़ जवाब दियागया "तो एक बात है, उसके भरोसे रहना अच्छी बातहै पर भीखके भरोसे रहना नरकभोग है।" औरतों के ठहाके से गूदर दुबेका घर आठ हाथ आसमानमें उठगया। उसी दिनसे भिखारी की स्त्री मेरीस्त्री से अधिक मिलने लगीं, वेलीफूल लगगया और आना जाना जारी होगया।

सोही वेलीफूल अपनी बेटी चम्पाको लिये पहुंची थीं। उनके आनेकी खबर सुनतेही यह वेलीफूल अपने अलबेले को घरमें छोड़कर बाहर चली गई। उसके जानेके बाद मैं बड़े सोचमें पड़गया। जिस घरमें मैं लेटा था उसी ओसारे पर वे दोनो बैठगईं मैं अब घर से निकल नहीं सक्ता था! गुड़गुड़ के भयसे तम्बाकू भी नहीं पीसक्ता था, पर चिलम में से धूंआ वे फ़ायदे निकलते देखकर जी तरसताभी था। आखिरको एक बात सूझी। नारियलका पानी गिलास में गिरा दिया, गुड़गुड़ के बदले सू-सू-सू-सू करके दम खींचने लगा। पलंगपर लेटे लेटे उन दोनो वेलीफूलों की खुशबू भी लेने लगा।

घरसे बाहर निकलतेही मेरे घरकी वेलीफूल भिखारीलाल की वेलीफूलकी ओर आंख मुंह और दोनो तरत्थियोंका पीठ दिखलाकर बोली "हेए वेलीफूल हेए वेलीफूल! ऐसा अंधेर कोई करे! देखो देखो पांवमें मिट्टी लग गई होगी!"

सिर हिलाके, ठोर चमकाके, नाक सुकड़ाके, भौं गिराके, दांतनिकालके और कुछ लजाके भिखारीलालकी घरवाली वेलीफूल हँसती हँसती बोली "नहे वेलीफूल, सो नहीं, छुट्टी न होतीथी, इसीलिये नहींआतीथी। न तो कवकी आईहोती।"

तब तक यह वेलीफूलभी उसी बिछावनपर पहुंचगई और

हँसकर बोली "हं, सो तो बातही है, चम्पाके बाबू आज कल घरही न रहते हैं इसी लिये।"

वह बेलीफूल। "जाओ! तुमको तो हरदम हँसी रहती है। जैसे अपने तमाम दिन मुँहमें मुँह मिलाये रहती हो वैसेही सबको समझती हो।"

यह बेलीफूल। "यहबात तुम झूठी कहतीहो, हम सब मुँहमें मुँह मिलाये रहेंगे तो कौन रसोई पानी करेगी कौन घर बाल देखेगी, कौन कचहरी जायगा और कौन मामला मुक- द्दमा करेगा और तुमको क्या? बाहर तो हैं बाहर हैं, घर हैं तो आठोयाम टांगपर टांग। हिः हिः अब कहो।"

वह बेलीफूल। "एह! तुमसे कौन जीते, तुम बड़ीपक्की हो।"

इन दोनों बेलीफूलोंकी इस तरह की खुशबू कुल और उड़ती पर वहां चम्पाभी मौजूद थी। इसी समय उसने उस बेलीफूल का पीठ थाम्हके और पीठही पर होके मुँहमें मुँह स- टाके बोली "माय माय! वह, वह, वह कबूतर!" जबतक इसका जवाब वह बेलीफूल देवे तब तक इस बेलीफूलने चम्पाको पक- ड़कर अपनी गोदमें बैठाली और दहिने हाथसे उसकी ठुड्डी थाम्हके बोली "बेटीकबूतर लेगी, कबूतर? आवो, ऐदाई! चम्पा को कबूतर पकड़के लादे!" बेटी खुशहोगई, गोदसे उठकर उछ- लती कूदती कबूतरकी तरफ चली गई। दोनो बेली आपसमें खूब खिल खिलके खुशबू निकालने लगीं।

"हे बेलीफूल! आजकल यमुना तुम्हारे आँगन आती हैं कि न।"

"ऐअ! यमुना! यमुना कि अब सोटी यमुना है? अब वह काहे किसी के यहां जायगी? सोही न!"

"तौं भी।"

"एह! वही एक दिन आई थी। सो आज? तिसका हुआ दस पन्द्रहरोज।"

"तो क्या सब कहती थी ?"

"दुर करो ! उसकी चर्चा हमें नहीं सोहाती । उसको छकरनाई छोड़के और कुछ आता भी है ?"

"हं हे बेलीफूल ! सो तू झूठ कहतीहो । मुझे भी कल भेंट हुई थी । सो क्या कहूं बेलीफूल ! झूठ कहें तो (आँखपर हाथ रखके) आंख न कामआवे ! अब जो अपनी बड़ाई हांकनेलगी है तो—,,

"अपनी बड़ाई कि अपने भाई कि बड़ाई—"

"भर बज्जर पड़े ! एक उन्हींको भाई है ? हम लोगों को भाई है जो !"

"इसी से सौंच न पूछता है ! तीन महीने से नैहरकी मिट्टी कोड़ रही हैं !"

"आहे बेलीफूल ! जोही यमुना सोही देवकी, दोनो एक से एक।"

"हिःहिःहिःहिः देवकी तो देवकी ही है—"

"अगर उसकी नाक कुछ सीधी होती तो और न वह जमीन पर पांव देती।"

"सो उसी को कहती हो ? और तुम अपनी सखीकी बात न कहो ? वह अपना रंग रूप कैसें बनाये रहती है।"

"उसकी कुछ न पूछो ! ऐसी बेटी पुतोही हम लोगों के घर में रहती तो न जाने क्या होता ।"

"होता क्या ? हम लोगों के घर के मर्द क्या ऐसेही हैं ? सांझ ही काटके फेंक देते।"

"हे बेलीफूल ! एक बात सुनी है—"

"है क्या ?"

"सुनी है कि तुमसे और फूलकुमारी से आजकल बड़ा सलाह है।"

"हँ! जैसा सल्लाह हमसे उनसे है वैसा सातघर सत्तुरहो उसे भी न हो।"

(मुसकाती हुई) "सो क्यों? भगवान्करे-"

(चेहरे पर बहादुरी प्रकट करके) हे "बाबा! उससे सल्लाह रखे सो पहिले अपने घरकी नाक कटा ले तव न-"

(मुसकातीहुई) "मर! सो क्या हुआ है, फूलकुमारी तो कैसी अच्छी लड़की है।"

"हूं! जैसी अच्छी वहहै वैसी वहीरहे। दुर! क्या कहोगी! परसों दाई को भेजा कि फूलकुमारी को कहदे कि चम्पाकी माय भेंट करने को बुलाती हैं। आह बा! वह तो लाल पीली होने लगी 'मुझे क्या छुट्टी है? मैं कि ऐसेही आँगन आँगन मारी फिरती हूं? कहो बेलीफूल इसका कुछ जवाब है-,,

"भई इसका जवाब वहीजाने। हमलोगोंको कोई बुलाती है तो इतना बड़ा कलेजा हो जाताहै।"

इसी समय चम्पा आँगन से हांफती दौड़ती आई, अपने माकी गोदमें लदसे बैठकर उसकी ठुडी के नीचे अपने दहिने हाथकी तीनउंगलियों से बारबार ठोकर देकरबोली 'माय माय!"

उसकी मा। "गे क्या है क्या?"

चम्पा। "माय! ऊ ऊं-ऊं"

उसकी मा। "गे क्या कहती है?"

चम्पा। "ऊ-ऊँ-ऊं ऊं—"

मा। "तो बोलन-"

बेलीफूल। "बेटी क्या लेगी? कौन चीज?"

चम्पा। (उंगली बतलाकर) "वह! वहहै किन! ऊ-ऊं—ऊं-ऊं—"

बेलीफूल। "वह लाल जो है सो—"

चम्पा, "हु-ऊं ऊं ऊं—"

बेलिफूल। यह बेलना लेंगी। यह ले! लेजा खेल।

बेलीफूल ने छप्पर से निकाल कर बेलना चम्पाके हाथमें दिया, चम्पा उसे लेकर हँसती खेलती फिर आँगन में चली गई। दोनो बेलीफूल फिर अपने काममें लगीं +

"हे बेलीफूल! चम्पाके बाबू तो अभी रहेंगे न।"

"एह! ऊ रहने हारे हैं? सात दिन तयारी करते हैं। पुर्निमासी के बाद चले जायँगे।"

"भला कहो तो! ऐसा भी कहीं होता है? इतने दिन पर आये भी हैं तो कुछ दिन ठहरेंगे भी नहीं? मालूम तुम उनको बहुत दिक करती हो।"

"मैं क्या दिक करूंगी?"

"सो मैं कैसे कहूं? जानो तुम कि जाने वह। सूखे खेत में पानी न पड़जाता है!" (हि हि हिः)

"हं सं, सो न झूठ मालूम इसी लिये झगड़ बौआ कहीं न जाने पाते हैं। भला तुम उपास कैसे पड़ोगी? बसिया जायगा।" (हि हि हिः)

"मर! मेरा काहे बसिआयगा? उपास पड़ोगी तुम बसिआयगा मेरा? सो न, हँसी न, करती हूँ। इतना जल्द भाग जायँगे तो लोग क्या कहेगा?"

"हे बेलीफूल! सोही सब कहने के लिये मैं बदनाम हूं।

—"बेलीफूल अब अपनी और भिखारीलाल की शिकायत शायद बहुत करतीं परन्तु उन्हेंऐसे बुरे काममें प्रवृत्त होने के लिये चम्पाने पूरा दण्ड दिया। खेलते खेलते उसने बेलना ऐसे फेंका कि वह उसकी माके पैर में लगा, कुछ चोटभी आई। माकी आंख कुछ लाल भी हुई, पर चम्पा की तरफ देखते ही गोस्सा ठंढा होगया। चम्पा खिलखिलाकर हँसने लगी। इसी समय (शायद बात बहलाने के लिये) मेरीघरवाली ने कहा "हे बेलीफूल? एक बार वह गीत तो गाओ। मेरा जी बहुत दिन से सुनने को लगा है।"

वह। है कौन ?
यह। है वही जो गोदावरीके गौने के दिन तुमने गायाथा
वह। हं हं बूझा बूझा—आज लाढ़ोवाला ?
यह। हं हं सोही।
वह आहिस्ते आहिस्ते गानेलगी—
आज लाढ़ो हँसके बोलो दूल्हा में तेरा ॥
कलकत्ते से बेसरी तुम्हारे लीये लायाहूं।
झूलनी में मोती पटने में गुथायाहूं ॥ १ ×
जगमग मंगटीका मेरट से आया है।
झूमका झबीयादार झांसी से मँगाया है ॥ २ ॥
जुगनू जड़ाऊदार पांचलड़ातिलरी।
हार चन्द्रकली चम्पा खास कसमीरी ॥ ३ ॥
अंग अंग गहना देखनको है आरसी।
रंग रंग कपड़ा झलाबोर बनारसी ॥ ४ ॥
यही एक बात अब मानो मेरी लाढ़ली।
फिरो देखो बोलो हँसो खोलो मनकी कली ॥ ५ ॥

गीत समाप्त होते न होते भीखारीलाल की फुलवारी गुल-ज़ार करनेवाली बोलउठीं "हे वेलीफूल ! अब बहुत अबेरहोगया; अबफिर—„

इतना कहते कहते वह कपड़े सम्भालनेलगी ' चम्पाने यह देखलिया, खेलना छोड़कर अपनी मां के पास चली आई। उसकी गरदन में लिपटगई। "घरचलो!" अच्छा ठहर चलतीहूं। "मेरी फुलवाड़ीवाली।" एह! "चमड़ेका घरहै क्या ? जरा और बैठो न।"

चम्पाकी मां। नहे वेली फूल। फिर दूसरे दिन—
चमेलीवाली बेली। हे, तनिकसा और बैठो.तनिकहीसा—
चम्पाकी मां। न,अब न—

+ भिखारी लाल के घर में बीरिचा कब पूरे तौर से होगी ? झगड़ लाल

कहते कहते उठखड़ीहुई। चम्पा उसका कपड़ा पकड़े आगे आगेहुई। मेरीस्त्री झटपट अपने घरमें चलीगई (जिसमें मैंथा उसमें नहीं) और वहांसे मिठाई लाकर चम्पाके हाथमें रखकर बोली "है! मायको न देना!" चम्पा हँसनेलगी और अपनी मां को देखकर खानेलगी। मैं यह नहीं कहसक्ता हूं कि चम्पा ने अपनी मांकी आज्ञालेने के लिये इस समय उसकी ओर देखा, कि इस बेलीकी आज्ञानुसार अपनी मांको लालच दिलाने के लिये। मुझे अपने घर में इसके लिये बहुत बहस करना पड़ाथा, परंतु कुछ स्थिर नहीं करसका! खैर। चम्पाने किसी अभिप्राय से देखाहो। पर उसका फल यहीहुआ कि मिठाई उसके मुंह में सटगई और चलती घोड़ीकी बछेड़ी की तरह चम्पा अपनी मां के आगे आगे निकली। पन्हानी घोड़ी की तरह उसकी मां भी उसके पीछेपीछे चली। मेरी स्त्री उनके साथ दरवाजे के मुहँतक गई। वहांकी बातचीत मैं सुननहीं सका। लौटकर वह मेरे घरमें आई। उसके चेहरे से मालूमहुआ कि वह कोई बड़ी मिहनतका कामकरके आईहै। मेरी तरफ देखने लगी, मुझे कोई बात न सूझी इसलिये पूछदिया॥

"बेलीफूल गई"

वह (लम्बी सांसलेकर) "गई! मलेच्छिन!"

मैं। "बातचीत तो खूबहुई होगी।"

वह (आंख चढ़ाके और मेरेपास बैठके) "एह! बकबककरके जान निकाले जाती थी"

मैं। "और गीत क्या होता था?"

वह। "दुर कीजिये! वह ऐसेही करती फिरती है।"

पांचवीं घटना॥

बच्चाका जन्म।

गौना हुए चार बरस बीतगये, परन्तु तौ भी दोको छोड़कर

घर में तीसरा न हुआ। मेरीमां यद्यपि गौना होनेके एकही बरस के अन्दर जाती रही, तौभी अक्सर कहती थी "दुल्हिनि को लड़कोरी देखलूं तो मुझे कुछहो। "किंतु भगवान्को यह पसन्द नहीं। जबसे मेरी श्रीमती घरबारके काममें मांकी गद्दीपर बैठी तब से उसने भी कुछ इसीतरहकी बातें कहना शुरूकी "न जाने भगवान् कब घर भरेंगे !" "बिना लड़के का घर भी घरहै !" इत्यादि इत्यादि, इत्यादि !

जितनी बूढ़ी औरत भीख मांगने आतीथीं, सब जादूटोना जानती थीं और सबसे जड़ी मन्त्र हासिल होताथा। सब साधु संन्यासी पहुँचेफकीरथे और आशीर्वाद तथा जड़ी बिभूति देते थे। देवस्थान देवीस्थान तथा पण्डा-स्थान और मेला-स्थान सबकेसब प्रत्यक्ष फलदेनेवाले थे और सबजगहका मन्ता किया जाताथा। इनके अलावे दूर दूरके ओझा डाईन बैद हकीम की दवा मंगाई जातीथी क्योंकि किसी न किसी की मन कामना इन में से एकने पूरी कीथी। अगर अकेली "वही" इसतरहुद में रहती तो भला यन्त्र मन्त्र कहीं रखा भी जाता, परन्तु यहां तो कई कोशिश करने वालीथी। दाई अलगही दिन रात परेशान रहतीथी। अपने ससुरालमें मेरी बहन इसीलिये परेशान रहती थी और मेरे घरके पास रहने वाली बेलीफूल, कचनार, लौंग, सीताफल, सखी बहनपा सबकीसब हैरानथीं। इनसबसे बढ़कर मेरीसासभी दिनभरमें तीनबार मंत्र फूंका करतीथीं। पर चार बरस तक इनलोगों के फूंक फांक से कुछ नहीं हुआ।

कहिये साहब ! बात उचितही कहनी चाहिये। मैं हुआ कि आप हुए। कोईहो; जब कहने लगे तो छिपाना क्या ? इतनी बातें मैं कहही चुकाहूं तो एकबात क्यों छिपारक्खूं ? कहना तो दिल खोलके कहना। सचपूछिये तो उनलोगों की ये कोशिशें मुझसे एक दम छिपी नहीं थीं। अलबत्ते वे मुझसे कभी नहीं कुछ कहतीथीं परन्तु उनलोगोंके तौर तरीके, बात चीत से

में सबकुछ समझ जाताथा। जब कोई बूढ़ी वा साधु वेषधारी दरवाजेपर भीखमांगने आताथा तो दाई दरवाजेपर आकर उस से बातचीत करती 'वह' डेवढ़ी में छिपकर खड़ीहोती। दाईकई बार भीतरजाती और बाहर आती और भीखभी अच्छी तरह दी जाती। पर यदि और कोई भीख मांगने आता तो घंटों चेंचें करता रहता था। मेरे ससुरालसे और बहनके यहांसे मर्दों का आना बन्द होगया। जब आवे तो दाई आवे और उसके साथ घण्टों बात चीत होती रहे। इन दाइयोंके आनेके दिन मैं अपनी स्त्रीको अक्सर असमय स्नान करते, विचित्र प्रकार से भोजन करते, कभी कभी कुछ धूपदीप देते देखताथा। ओड़हुलका फूल, लाल एकरंगा, रक्तचन्दन, कोरी प्याली आदि का खर्च मेरे यहां अधिक होनेलगा। मैं सबकुछ देखताथा सबकुछ समझता था, परन्तु बोलता कुछ न था। विद्वान् शिक्षित और सभ्य अंगरेजों की तरह मैं निष्पुत्र रहना नहीं चाहता था; परन्तु इन मूर्खोंकी तरह पुत्रवान् होनेके लिये मैं व्यग्रभीनहीं रहताथा, मैं बखूबीजानताथा कि इन कोशिशों से कुछ होनेको नहीं था। खैर साहब! चार बरस तो इसीतरह बीते। तिसकेबाद एकदिन मेरी श्रीमती के सिरमें दर्द हुआ। जी घूमने लगा और भोजन के बाद एक वमन (कै) भी होगया। मुझे तो यह देखकर कुछ चिन्ताहुई, परन्तु दाई बहुत खुश मालूम हुई और "वह"भी अप्रसन्न नहीं मालूम हुई मैंने जाकर उससे पूछा "क्याहोता है क्या?" वह चिढ़कर बोली "कुछ न होताहै, क्या कीजियेगा।"

मैंने समझा कि शायद बीमारीकी वजह से यह रंजहोकर बोलती है। कहा "कुछ बतलाओ तो दवाभी मंगादें"। दवाका नाम सुनतेही धमककर वह दूसरे घरमें चली गई और बोली "एह! मैं न कुछ खाऊंगी—"

सच कहताहूं मैंने उसके इस रंजका कुछ भी मतलब नहीं समझा। दिन दिन उसकी बीमारी बढ़ती गई। अन्नके ऊपर

अरुचि अधिक होतीगई, सर में दर्द बढ़तागया, नाताक़ती ज्यादे होगई, चेहरेपर सुफेदी आनेलगी, बहुत पतली दुबली होगई। मेरी तबीयत उसे देखदेखके और भी घबड़ाती थी, पर जब कभी मैं दवाका नाम लेताथा तो वह कह उठती थी "एह! मैं न कुछ खाऊंगी–" और दाई के चेहरे का रंगभी बदलजाता था। तब मैं और भी घबड़ाता था, पर भेद कुछ समझ नहीं सकाथा। इसीतरह तीन महीने बीते। चौथे महीने में एक दिन मैं कचहरी से आया था, देखा आंगन में वह पड़ी है, दाई पंखा झलरही है। उसकी दशा उस समय देखकर मुझे बड़ी मया उत्पन्न हुई। उसके पास जाकर कहा "सुनो तो! इस दशा में कबतक रहोगी? अब मैं न मानूंगा, दवा जरूर खिलाऊंगा।" इतना सुनकर वह हँसके बोली "पांच महीना और ठहर जाइये तो दवा खिलाइयेगा।"

उसकी इस बातसे गोया मेरी आंखों की पट्टी खुलगई, मुझे कुछ सूझने लगा, तबीयत भी कुछ ख़ुश होगई। मेरे चेहरे का रंगबदलते देख दाई आंगन से निकल गई। मैं कुछ कुछ मुसकाता पर आंखों से बड़ी चिन्ता और पशोपेश जाहिर करता हुआ उसके कन्धेपर हाथ रखके कहा "सच तो कहो?"

बड़ नाज़से सरनीचे करके वह बोली "यह बात भी कोई झूठी कहती है?"

मैं सचमुच बड़ा ख़ुशहोगया। हाथ तो उसके कन्धेपर थाही, सिर भी नीचे झुकादिया, यहांतक कि मेरा मुंह उसके मुंह में सटगया। इसके बदले उसने अपने दोनों बाहों से मेरी गरदन पकड़ ली। फिर दोनों उठे, घर में चलेगये।

घर में जाकर मैं खटिये पर बैठगया और वह मेरी गोद में बैठगई, अपने बायें हाथपर उसे चित लेटाकर, उसके सरको नीचे गिरजाने से बचाये रखनेके लिये (असलमें केवल इसीनियतसे) मैंने अपने दहिने हाथ से उसकी ठुड्डी और गाल पकड़ लिया।

फिर भ्रम हुआ कि शायद वह मेरी बात न सुनसके इसलिये अपना मुँह उसके कानके पास लेजाकर समझाकर पूछा "तो कहती न काहे थी ?"

मेरी गरदन फिर भी वैसेही पकड़ के उसने कहा "हूं! कहती कि न। बीया बोनेके लिये।"

मैं। "मैं किसको कहने जाता ?"

वह। "ढेर यार दोस्तको! मर्दके पेट में बात पचती है ?"

मैं। "और अगर सब लोग जानही लेते तो क्या ?

वह। "उसने मना किया था।"

मैं। "किसने ?"

वह। "जिसने जड़ी दीथी।"

मैं। "तो यह जड़ीही से हुआ ?"

वह। "तब ?"

मैं। "और मुझसे—"

वह। "एह! जाइये—"

कलक्टर साहबके साथ कई दिनतक सफ़र में रहकर मैं दो बजे दिनको घर पहुँचा था। बैलगाड़ियों के चलने से डेढ़गज कीचड़का बोझ लिये दिहात की कच्ची बरसाती सड़क, लचलचाता चर्रचों बोलता हुआ सैकड़ों बरसका एका, पुरवा हवा के झोंके से सत्तर पटकन खानेवाला चौदह छटांक का लंगड़ा घोड़ा, और तीनसेर ताड़ी से मुलाकात किये झूमनेवाला बूढ़ा एकावान; इन सबकी पूरी मदद रहने के साथ बिना अन्न बिना पानी सात घण्टे तक रास्तेपर रहनेसे किसीकी तबीयत जितना खुश होसक्ती है, उतनीही खुशी के साथ में आंगनगया। वहां जाकर तबीयत और भी खुश होगई।

आंगन में जाकर देखा कि कुलदीप बाबू की दीदी सामने के ओसारे पर खम्भे में सटी बैठी हैं। मुँह उसका बहुत मलिन है, एकहाथ जमीनपर अड़ाये है और दूसरे हाथ से पेट थाम्भे है

सिरके बाल बिलकुल खुले हैं, और पहनने का कपड़ा भी साफ नहीं है। दाई उसके पास चुपचाप खड़ीहै और दहिने हाथ से उसका पीठ दबा रहीहै। इन दोनोंके चेहरे पर उदासी है। घर ओसारा सब सूना मालूम होताहै और आंगन श्रीहत मालूम होताहै। यहतमाशा देखकर मैं कुछ घबड़ागया, तबीयतमें तरह तरहकी बातें आनेलगीं, मुंह कुछ सूखसा गया। जल्दी से उसके पासगया, पर ओसारे के नीचेहीसे पूछा "क्या हुआहै क्या? इतनी उदासी काहे है?"

जितनी मुहब्बत,और मुलायमियत ज़बान से ज़ाहिर होसक्ती है, उतनी मैंने उससमय ज़ाहिरकी। पर इसकी असर उलटीही हुई। फूलकी पत्ती कांटे के समान चुभी, मेरी बात तीर के समान लगी। ऐंठकर वह मेरीओर पीठकरके बैठी और नाक से आवाज़ निकालकर आहसर्द के साथ बोली "हूं! मेरी जान जाती हैः! इनको क्या होता है बात सुनके देह में आग लगजायंः! आहः"

खैर! मेरे मन कुछ और है कर्त्ताके मन और! मैंने अपनी बातकी कुछऔरही उम्मेदकीथी, परन्तु यह दूसराही फल हुआ। उसके गोस्सेका कोई कारण मैं समझनहीं सका। अचम्भे में आकर मैंने दाईकी तरफदेखा। उसने सिरनीचे करके कहा "तनिएक चमेनके केहू बोला लावेत।"

अबमैं सब कुछ समझगया। मालूमहोगया कि आज का दिन मेरेघरमें किसीका जन्म दिन कहलावेगा। उसकी ओर देखकर कहा "तो डर क्या है? अभी धनपतवा चमेन को बोलालाताहै–"

मेरी बात समाप्त होने के पहिलेही दाई बोली "नौकर से ऊनतू आई। सवाग़ेके जायके होले।"

इसके साथही वह आहके साथ बोली "दाईः! चुपरहोः, जाने दोः, मैं मरूंगीः, काहेको कोई जायगाः आहः"

असिस्टण्टदाई ने सम्मन जारीकिया, उसके अफसरने वारण्ट निकाला, लाचार होकर मुझेदौरा करनाहीपड़ा । उसी हालत में मैं चमैनके घर दौड़ागया और दौड़ाआया । चमैनभी मेरे साथ आने लगी पर घर पहुंचने में उसे कुछ देरी हुई । मुझे जाने आने में प्रायः ४० मिनट लगा होगा । लेकिन तरद्दुद से मैं इतना घबड़ागया था कि यह मुझे नहीं मालूम हुआ कि रास्ते में क्याहोताथा । यहां तक कि अपने दरवाजेपर आने के बाद भी मैं अपने आंगनका शोर गुल नहीं सुनसका ।

हांफता हुआ मैं आंगन में खड़ाहोगया, कहा "दाई ! दाई चमैन आई ।" मेरी जबान से इतना निकलतेही किसीने पीछे आकर मेरे सिरपर एक लोटा पानी गिरा दिया । जबतक मैं पीछे फिरकर देखूं तबतक दाहिनी ओर से औरतोंके ठहाके मारने की आवाज आई । पर जबतक मैं उसतरफ देखूं तबतक बाईं ओरसे और पानी गिराया गया, और सामने से जगमोहनकी मांकी आवाज से,

"आहो जनमेंहैं दीनदयाल दोनों कूलतारनहो" सुनाई पड़ी । पानीका बौछाड़, औरतोंका ठहाका और जगमोहनकी मांका गीत इतने बढ़े कि मुझे पहिले आंख बन्द करलेना पड़ा, फिर हाथों से मुंह छिपालेना पड़ा और आखिरको वहीं बैठजाना पड़ा ।

कुछदेरतक पानी गिरतारहा फिर धीरे धीरे पानीका गिरनाबन्द हुआ । मैं तब उठकर खड़ा होगया । फिर चादरसे मुंह पोंछा, आंख खोला । देखा कि "ताड़का चलक पालकुण्डला" दौड़ी चली आती है । ह-ह-ह-ह-भ-भ-भ-भ-करकेलोटापानी और भी मेरे सिरपर गिरगया । हँसीतो कोईनहीं । पर सबकहनेलगीं "हँ हँ खूबहुआ खूबहुआ ।" इतनेही में बृद्धबालिका जगमोहनकी मां खुश होगई । बहादुरी से फूलकरदांत निकालकर सिर ऊंचे उठाकर इधर उधर देखने लगी । मैंने फिरभी मुंहपोंछलिया, फिर

भी आंखखोला, सामने देखा कि मेरीश्रीमती घर से झांकरही हैं।

ग्रहणसे मोक्ष होजानेपर निर्मल नीले गगनमण्डल में आपने कभी सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल की शोभा देखीहै? अहा! वह कोमलता, वह सुन्दरता, वह माधुर्य और वह लालित्य! उस अनुत्कट कान्तिकी उपमा आपने कहीं देखीहै? मैंने तो उस चन्द्रमण्डल की उपमा उस दिन अपनी श्रीमती के मुखमण्डल में देखली। पर यह मण्डल उस मण्डलसे भी एक बातमें बढ़ा था। इसमें ईषत् हँसी भी थी। मेरी यह दशा और औरतोंकी वह दशा देखकर उसे प्रसवका दुःख भूलगया था, बल्कि कुछ खुशहुई थी। खुले कालेबालों के बीचमें पुत्रोत्पादन की असह्य पीड़ाके चिह्नों से अंकित उसका गोरा, पर पीला, चेहरा थोड़ी हँसी के साथ विचित्र छवि दिखला रहाथा। उसकी वह मनमोहनी सूरत देखकर मनहीमन सौबार मैंने उसे प्राणेश्वरी कहा।

पर उतनी औरतों के उपस्थित रहने के कारण मुझे अपनी आंख नीचे करलेनीपड़ी। देखा कि चपकन चादर टोपीआदि सब पीले होगये हैं। मालूमहुआ कि पानीके साथ हलदीभी मेरे शिर पर गिराईगई थी। अब इनसबकी हँसी भी कुछ घटगई और मेरी तबीयत भी होश में आई। मेरी स्त्रीके पास से यमुना और सुन्दर गाती निकलीं।

जब जनमे रघूनन्दन, अब रघूनन्दनरे
ललनारे राजभवन अति उतसव
अयोधा में धूम मची॥

छठी घटना॥

सिकरी और चम्पाकली॥

लड़के के जन्मके बाद ज्योतिषी जी आये थे और उसका नाम लखनूलाल रखके चलेगये थे। परन्तु वह नाम उसे कैसे दियाजाता? मेरे ससुरके साले का भी नाम तो यही न था। इसलिये मैंने उसका नाम बैजनाथ रखा; पर बेलीफूलके बड़े भाई ने अपने लड़के का यही नाम रख लिया था, सो उन सबसे झगड़ा खड़ा करना उचित नहीं। ऐसेही मेरे नौकरके छोटे भाई का नाम गनेश था, फलाने का नाम सुरेश था, इसका नाम गोपाल था, उसका नाम बलदेव था। लाचार होकर मैंने उसका नाम बजरंगबिहारी रखा, परन्तु इतना बड़ा नाम उसकी माको पसंद नहीं। सो साहब ऐसेही कई कारणों से मैंने उसके नाम रखने की कोशिश छोड़दी। लड़के को उसकी मा "बचा" कहती थी, दाईभी "बचा" कहतीथी और मैंभी उसे बचाही कहनेलगा सो कोई उचित नाम न मिलने के कारण वह बरस दिन की उमरतक बचाही कहलाता रहा। बचे को दांत निकल आया, बचा घसकके चलनेलगा, खड़ा होनेलगा, पर तौभी बचाही बना रहा। चिट्ठी पत्री में उसके नामके स्थान में "चिरंजीव श्री बचाबाबू" लिखाजाने लगा।

एक दिन बचाबाबू घरमें न थे और उनकी माभी वहां न थी। मैं अकेले खटियेपर बैठा, तकियेपर भारदिये आराम से नारियल पी रहाथा। तबीयत में आई कि जरा बचेको प्यार करलूं। पुकार के कहा "ऐ दाई! बचेको भेजदे।"

मेरी दाईको एक विचित्रही आदत है। अगर मैं दरवाजेपर

आंगनमें वा ओसारेपर बैठकर कोई काम करनेको उसे कहताहूं तो वह बहुत जल्द करदेती है। परन्तु अगर घरमें बैठकर मैं उसे कुछकहूं तो वह हरगिज नहीं करती है, अवश्यही मेरी श्रीमती को घरमें आनेके लिये कह देती है। यह आदत वह मुझपर अविश्वास करनेके कारण नहीं रखती है—सो वह बड़ी धीरा गम्भीरा बूढ़ी है—पर वह ऐसी आज्ञाओंका अर्थ वैसाही समझती है। उससमय जब मैंने उसे बच्चे को देजानेको कहा तबभी उसने उसीसे कहा "दुलहिन! बच्चाबाबू के बोलाहट होइतबा, घरेमें जायल जाओ।,,

दुलहिन रंजसे बोली "हूँ,जातीहूं दौड़ी! काहेको होगी मेरी बुलाहट और काहेको होगी बच्चे की बुलाहट।"

दुलहिनके रंजहोकर बोलनेका कारण था—सो कारण कुछ साधारण नहीं था। उसीदिन सुबहको वह अपनी सम्पूर्ण मनमोहनी शक्ति के साथ आकर मेरेपास बोलीथी "थोड़ासोना मोल लेते।" मैंने पूछाथा" काहे?" उसने कहाथा" बच्चेको सिकरी उकरी बनवादेते।" लड़केके बहाने लड़कीरी जीवे। बच्चेकी सिकरी के बहाने बीबी साहबा अपने लिये भी कुछ बनवाही लेतीं। इस लिये मैं इतनाही कहकर दरवाजे को चला गया था कि "आजकल रुपया कहांहै?" उसी बातकी मलाल वह इस समय निकाला चाहती थी।

दाईको जवाब देकर उसने बच्चेको गोदमें लेलिया। गोद में जातेही बच्चा बोला "हूं हूं अम्म—"

मैंने तजवीज किया कि मेरे कहनेसे वह तो बच्चेको हरगिज न आनेदेगी, सो अगर बच्चेही को बुलासकूं तो अच्छी बातहो। भीतरही से पुकारकर कहा "बच्चाबाबू! यहां आओ, यह लेओ!"

मेरी आवाज सुनतेही बच्चाबाबू चौकन्नाहुए। मेरे यहां आनेके लिये गोदसे उतरनेकी कोशिश करने लगे। पर उन्हें मा काहेको आनेदे। इसपर बच्चाबाबू रोनेलगे। मैंने फिर यहांसे क-

हा "आओ आओ, बचाबाबू, यह लेओ।" अब तो वह और जोरसे रोने लगा।

जबतक वह गोदसे उतरा नहीं तबतक रोताही रहा। और उतरतेही मेरी ओर आने लगा। किन्तु बीबी साहबा उसे इस तरफ नहीं आने देतीथीं। जब वह इधर आनेलगे तब वह उसे गोद में उठालें; वह रोने लगे, मैं इधर से पुकारदूं, वह और जोरसे रोनेलगे, फिर नीचे उतार दियाजाय। तब किसी तरह से बच्चा न रुका, तब लाचार होकर उसने बड़े भोंक से उसे गोद में उठालिया; लपककर चौखठ के पास आई; और बड़े झोंकहीं से उसे मेरेदेखते चौकठ के भीतर बिठालकर यों कहती चलीगई "दुरहो! ऐसा जिद्दी लड़का कहीं नहीं देखा, जैसा बाप वैसा बेटा।" जमीनपर बैठतेही बच्चाबाबू "हूं हूं" कहते मेरी ओर चले। मैंने उसकी बातका जवाब उसी समय दिया "और जैसी मा जिद्दी वैसा बच्चा जिद्दी।"

बाहरही से वह बोली। "भला! मा जिद्दी न है तब!"

बच्चाबाबू तबतक मेरे पास खटिये के नीचे पहुँच गये और दोनों हाथ उठाकर "हूं हूं" कहने लगे। मैंने एक हाथ से उन्हें ऊपर उठालिया गोद में बिठाल लिया और चुम्मा लेने को मुह बढ़ाया मेरी इस बेअदबी के लिये बच्चाबाबू ने मेरी पूरी सजा की। ज्योंही मेरा मुह उसके मुहके पास पहुँचा कि उसने एक हाथ से मेरा कान और दूसरे से मेरी मूंछ पकड़ ली।

मूंछ और कान छोड़ाने की कोशिश करते हुए मैंने कहा "बस, अब यही तो तुम्हारी शैतानी है।"

शैतानी का शब्द सुनतेही उसने मुट्ठी कसदी, मुझे दर्द होने लगा।

"उह! उह! छोड़ दे, अरे छोड़ दे!"

एकहाथ से अगर मैं उसे थाम्हे नहीं रहता तो वह खटिये के नीचे गिर गया होता। दूसरे हाथ में नारियल था। अगर यह

हाथ जरा भी डोलता तो चिलम से आग गिरकर दोनोंको जला देती। ऐसीही दशामें बच्चेनेमुट्ठी कसदी। मैं बेबस पड़गया।

"ऐसा शैतान है! अरे जरा देखो, इसने मेरी मूंछ पकड़ली है, आग गिर जायगी।"

बच्चे की मा मुसकुराती हुई घर में आई। मेरी दशा देखकर बोली "नीक हुआ, जैसाही जिद्द करके बुलाया था।"

फिर मेरी मदद को वह आगे बढ़ी। परन्तु बच्चाबाबू ने खुद बखुद मेरी रिहाई की। चिल्लाकर बोलने में मेरा मुह खुलते और ठोर हिलते देखकर उसने मूंछ छोड़दी और नीचेकी ठोरपकरली। फिर दांत दीखपड़ने पर उसने कानभी छोड़दिया और समूचा पहुँचा मेरे मुहमें घुसेड़नेका फिक्र किया।

मैंने कहा "ब-ब-ब-ब-ब-ब-बाः"

बच्चाबाबू खिलखिला उठे, गोदमें खड़े होगये और बड़ीखुशी से मेरा नीचेका ठोर पकड़के खींचा।

फिर "ब-ब-ब-ब-ब-ब-बाः"

और भी खुशी हुई, खिलखिलाहटसे माकी तबीयत फूलगई। मेरेठोरपर और जोरसे टानपड़ी।

तब तक बच्चाबाबूकी मा उसके पास पहुँचगई। बच्चाबाबूका मुह थाम्हने के लिये उसने हाथबढ़ाया। मैंने उसीहाथमेंनारियल रखदिया और इस तरहसे मैंने अपने हाथसे सहारा नारियलको दिया कि अगर वह नारियल को थाम्ह न लेती तो आग जरूरही गिरजाती। "मर! मर! ई क्या?—"

तब तक तो मैंने नारियल एक दम छोड़दिया। उसे थाम्हही लेनापड़ा। नारियल छोड़नेकी लड़ाईमें इसप्रकार शिकस्त खाने से चिढ़कर उसने झिड़ककर कहा "मैं कैसालूं? लीजिये अपना नारियल।" नारियल मेरे पास लेआई।

मेरी नियत तो कुछ और थी। अलावे इसके, लड़ाई में मैं फतहयाब हुआ था। हँसकर कहा "जरा नीचेही में रख दो।"

वह (आंख भौं चढ़ाये) "मैं कैसारखूं? लीजिये, जो जीमें आवे सो कीजिये।"

मैं (वैसीही हँसीके साथ) "अच्छा मेरे लिये नहीं रखोगी तो बच्चेके लिये तो रखदो उसकी देहपर आग गिर जायगी।"

इतना कहकर मैं खटिये पर लेटगया। बच्चाबाबू मेरे कलेजेपर सवार होगये, मैंने कहा "हुः"। बच्चाबाबू खिल खिला उठे। मैंने उसे दोनों हाथों से पकड़कर कलेजेसे लगालिया और मुह चूम कर कहा "वाह बेटा वाह।"

मैं उसके बच्चेसे इतनी खुशी हासिलकरूं और वह चुप चाप नारियल लिये खड़ी देखती रहे? यह इन्साफकी बातथी? यह बच्चेको खेलानाथा कि उसे चिढ़ानाथा? ऐसेही दोचार बातें कहती उसने नारियल नीचे रखदिया और तब बच्चेकी तरफ हाथ बढ़ाकर उसने कहा "चलरे चल, यहां कहां तेरा मेरा बास।"

मैं (फिर हँसकर) "यहां मेरा बास, (अपने कलेजेपर हाथ रखके) यहां बच्चाबाबू का बास और (अपनी बाईं तरफ खटिये पर हाथ रखकर) यहां एक आदमी का बास।"

वह (कुछ कुढ़कर) "अच्छा, बहुत अच्छा! चलरे चल! बात लोतो मुझसे औ क्या लो तो किससे।".

इतना कहकर बच्चे को मेरे कलेजपरसे उठालेने के लिये उसने हाथ बढ़ाया। वह हाथ मैंने थाम्ह लिया और कहा "एह! अगर इतनी कहावत मैं जानता!"

वह (आंख चढ़ाकर, और जाहिरा कुछरंजहोकर) "छोड़िये, तबतो और न कोई घरमें रहने पाती।"

मैं। "जरा सुनो तो, काहे न रहने पाती।"

वह। "छोड़ न दीजिये हाथ? कूटपीस खाकर—"

हम दोनों की झकझोरी देखकर बच्चा चिल्ला उठा, खेलना भूल गया, रोने लगा।

वह उस बात को छोड़कर खटिये पर बैठ गई। दूसरे हाथसे बच्चे

को थाम्ह लिया, और बोली "नकानो, बच्चा मेरे! न कानो। और झोंक से मेरी ओर "छोड़िये न! बचा रोने लगा।"

मैंने अपने मनमें सोचा कि यह बड़ी बुरी बात हुई। अगर हमदोनों की झकझोरी देखकर यह रोदिया करेगा तो कैसे काम चलेगा। परन्तु इतनेही में उसने अपना हाथ छुड़ाने को जो जोर किया तो मेरा खयाल इसतरफ आया। अब बचा फिर खेलने लगा।

मैं "जरा बैठो तो।"

वह इसबात से बहुत चिढ़गई "छुइजनु गयऊ पाक बरतोरा।" चमककर ऐसा झोंक मारा कि हाथ छुटगया। फुरती से फिर खड़ी होगई और बच्चे को अपनी गोदमें लेने की कोशिश करके बोली "चलरे यहां से।"

पर बचा जाने नहीं चाहता था, रोने लगा।

वह सचमुच चिढ़सी गई। बच्चेको छोड़कर चल चली। इसी समय मैंने पूछदिया "तो सिकरी कितने में होगी?"

लाल लोहेको पानी में रखने के साथही लाली जाती रहती है पर पानी में फदफद होने लगता है, और लोहे की गरमी भी कुछकुछ रहही जाती है। परन्तु मेरी बात सुनकर बच्चे की मा सबप्रकार ठंढीहोगई। सिर्फ जरासा कसर भौंपर रहगया।

बीचघरही में मेरी ओर फिरी, सिर्फ भौं तिरछी किये थी, पर और सबतरहसे हँसतीहुई बोली "क्या?"

मैंने बड़ा गम्भीर भाव अवलम्ब करके, पर बच्चेकी तरफ ध्यान करके "और उंगली से उसकी गरदन और छातीपर चिह्न करके कहा "ऐसे सिकरीरहेगी तो सचमुच बहुतखूबसूरत मालूमहोगा?" उसे विश्वास होगया कि मैं धोखा नहीं देता था। लौटी, खटिये के पासआगई। बोली "मैंनेकहा तबतो रंजहुएथे, अबक्याहुआ?"

मैं (साधिकही तौरपर) "न सच कहताहूं, सिकरी अच्छी मालूम होगी।"

वह अब खटियेपर बैठगई। ज्यों ज्यों मैं उसकी तरफ ध्यान नहीं देता था त्यों त्यों वह ज्यादे मुहब्बत दिखलाने लगी। "तो कब बनेगी?"

मैंने बचेकी ठुड्डी थाम्हके कहा "भगलुआ अच्छी सिकरी नहीं बनावेगा। यह बंगाली सोनार से अच्छा होगी।"

अब तो वह वारी वारी होगई। खटियेपर लेटगई और मेरेमुहके सामनेमुह,पर ठुड्डीपर हाथ रखकर बोली "तो उसीसे मेरेलियेभी-"

मैंने चमककर पर हँसताहुआ उसकी ओर देखकर कहा "अब तुम्हारे लिये क्या?"

वह नाकसे बोली, मुहसे साफ आवाज नहीं निकलती थी "मँअ-मेरेलिये भी-चम्पाकली।"

ठुड्डीपरसे हाथ हट गया, मुहसे मुह सट गया। मैं कुछ जवाब देना चाहता था कि बचा चिल्लाउठा,

---

सातवीं घटना।

भिखारीरायकी भकभकी।

मेरे घरके पूरब दरवाजेसे दसही पन्दरह कदमपर भिखारीरायका घरहै। मेरी मनमोहनकी बेलीफूलके प्राणेश्वर और चम्पाके जन्मदाता भिखारीलाल दूसरेहैं। यह भिखारीराय जातका कायस्थ, पर जाहिल झिरझिराहा बूढ़ाहै। यह अपनेको दुनिया भरके लोगोंसे होशियार और चालाक समझता है पर वास्तव में लासानी उल्लू और भद्दाहै। दोनों शाम खाना तो मुश्किल से मिलताहै, पर धनमें यह अपनेको कुबेरका दादा समझता है।

घर छोड़कर किसी दूसरे शहरमें यह स्वप्न में भी नहीं गया था, परन्तु गप शप सारे संसारका करता है।

भिखारीराय ब्राह्मणोंपर बहुत रंज हैं। शादी श्राद्धमें ये लोग कुछ पुजालेवें, एकादशी एतवारको कुछ पुजालेवें, कहीं जाओ तबदेओ, कहींसे आओ तब देओ; जहांतकपाओ इन ब्राह्मणोंको देओ। भला कहिये तो, इन लोगोंका कुछ कर्जा धारते हैं? वा इन लोगोंको भगवानने फरमान लिख कर दिया था? अपने हाथ कागज, अपने हाथ कलम, सारे संसारको जाहिल बनाकर अपनी पूजा प्रतिष्ठा के लिये शास्त्र पुराण बनाडाला। कहियेतो ऐसी बुरी जातिसे कोई खुश रहेगा? तब भिखारीराय क्यों इनसे खुशहों?

ब्राह्मणोंपर भिखारीरायके रंजहोने का एक और कारण है। विचारे भिखारीरायने किसका क्या बिगाड़ाथा कि इनका जन्म इनके घरमें हुआ? यह अपने बापके लड़के क्यों बनाये गये। अगर कायस्थही होना था तो किसी शिरिस्तेदार पेशकारके घरमें इनका जन्म क्यों न हुआ? अगर इनके जन्म होने के बारे में इनका कुछभी अखतियार होता तो यह हरगिज अपने बाप के वंशमें जन्म न लेते। और इनका अखतियारनहीं रहा तो क्या? दश भले आदमियों को तो इसके बारे में उस समय कुछ कहना उचित था, पर कहे कौन? वहां कोई भला आदमी रहे तब तो वहां तो हैं खाली ब्राह्मण, ये लोग कायस्थों की भलाई कब होने देंगे–सो कायस्थों मेंभी भिखारीराय की! न ब्राह्मण होते, न भिखारीराय को कुनकुनराय का बेटा बनना पड़ता और न तीन बीघे खेतसे जन्म बिताना पड़ता।

इसतरहसे भिखारीरायब्राह्मणोंपर तो रंज हैंही; पर उन सबमेंवह मुझपर खास करके रंज हैं। ऊपर कहे हुए अपराधों के अलावे मैंने उनके साथ और भी कई बुराइयां की हैं। कचहरीका सब काम, क्या शिरिस्तेदारी, क्या पेशकारी, क्या अमलागरी, क्या

वकालत क्या मुख्तारकारी, सबही काम कायस्थोंकेहैं। कायस्थ लोगोंकी ये सब काम मौरूसी जायदादहैं। उन कायस्थों में भी भिखारीराय सबसे अव्वल हक रखते हैं। सो हक मैंने न रहने दिया। अमलेगरी में भी पेशकारी करके मैंने उनका सब हक मिट्टीमें मिला दिया। कहिये, मेरा यह अपराध क्या क्षमा किये जाने के योग्य है ?

और भी कई कारणहैं। जब भिखारीराय का घर वहां पर बन गया तो मेरा मकान वहां क्यों कायम रहा ? अगर कायम भी रहा तो उनका दरवाजा उत्तर मुहका रहने पर भी मेरा दरवाजा पूरब रुखका क्यों हुआ ? भिखारीराय के हाथ पैरमें बेवाई रहने पर भी मेरेहाथ पैर चिकने क्यों हुए ? भला मैं तो उनके आगे का पैदाहुआ हूं, तब भी महल्लेवाले उनसे बढ़कर मेरी प्रतिष्ठा क्यों करते हैं ? उन्हे खेतको जानाहो तो कोसोंतक पैदल जाते हैं और मैं पावभर जमीन जाने के लिये एकेपर सवार क्यों हो लेताहूं ? उनके सिरके बाल पकने लगे, मेरे काले क्यों हैं ? उन के कई दांत गिरगये, मेरेसब मौजूद क्यों हैं ? ऐसे ऐसे हजारों कारणों से भिखारीराय मुझसे खासकर रंज रहते हैं।

मुन्शी भिखारीराय मुझसे रंज रहते हैं, इसलिये मैं उनसे बचबच कर काम करताहूं, तौ भी किसी न किसी तरह से उनसे खट्टा लगही जाती है। एक दिनकी बात सुनिये।

मैं आँगनमें कोठेपर बैठा कुछ लिख रहाथा, अचानक दरवाजे पर से भिखारीरायने आवाजदी "झगड़ूलाल हो होत ! झगड़ू लालहो होत !"। मैंने भीतरही जवाब दिया "आये मुन्शीजी, आये।" फिर मैं दरवाजेपर आया। देखा कि मूर्त्तिमान क्रोध प्रचण्ड होकर सामने खड़े हैं।

स्वभावहीसे भिखारीराय लम्बे थे, पर इस समय क्रोधसे भरकर अपनी सामर्थ्य दिखलाने के लिये वह इतना तनकर खड़ेहुये थे कि साक्षात भीमसेन मालूमहोतेथे। गजपृष्ठ समान मस्तक के

साथ डेढ़हाथ लम्बे चेहरेमें टेढ़ीनाक,भौं और लाल तनेनी आँख से खुले बिलबिलाते मुहकी अपूर्व शोभा थी। लम्बे हाथोंकी तरत्थियां दोनों तरफ कमरपर पड़ी हुईथी और दोनाली बन्दूक को मात करनेवाली नाक से अजगर सांप की तरह लम्बी सांस निकल रहीथी। फुरांठी मूंछ और खुटियानी दाढ़ी से मिलते जुलते चोकटे गालपर गोस्से से लाली आ रहीथी। ऐसा अपूर्वरूपधारी मुन्शी भिखारीराय को अपने दरवाजेपर खड़ा देखकर मैंने कहा "क्याहै क्या मुन्शीजी ? क्या है क्या ?"

मुन्शीजी बड़े ललकके साथ बोले "क्या रहेगा क्या ? भलमनसाहत तुझ में कुछ रहे तबतो भले आदमियों की इज्जत करने जानो, नालायक–"

"अरे मुन्शीजी जराठण्ढे तो होइये, ठण्ढे तो होइये।"

"फिर रे रे कहता है ? अबेपाजी ! रे कह अपने बापको। मुझे एक बार रे कहेगा तो तुझे सौबार रे कहूंगा। लाख—"

मैंने देखा कि जबतक इसकी खुशामद नहीं करूंगा तबतक यह मानेगा नहीं। कहा "जनाब मुन्शीजी साहब ! आप क्यों इतने रंज होरहे हैं, आपकी तरह खानदानी लोगों को इतना गोस्सा करना मुनासिब नहीं—"

मैंने इतना कहते कहते उनका हाथपकड़कर आगे खींचना चाहा, पर उन्होंने झिड़ककर मेरा हाथ छुड़ा लिया और बोले "हटो-दूर हो, हाथ क्या थाम्हते हो?मेरे सामने अपनी काबलीयत मत देखाओ, मैं सब कुछ जानताहूं। काल के बनिया आज के सेठ—"

मैं। "भला कुछ बतलाइये भी तो कि कुछ समझे—"

वह। "एह ! बड़े काबिल समझने वाले बने हैं। बाप बहुत समझतेथे कि बेटा समझने आये हैं। अरे मैंतो तुम्हारे बापको देखचुकाहूं। मेरे आगेका—"

मैं। "सो तो आप सब जानतेही हैं जरा कुछ कहिये भी तो कि क्या हुआ है।—"

वह। "हं हं हँ, बूझा बूझा, तुम्हारा खानदानही ऐसा है। तुम्हारे बाप थे सो टकेटके को मारे मारे फिरते थे, दश दरवाजे से भीख मांगकर खाते थे उनके बेटा तुम काबिल बनेहो। बेरहमन के घर में कब किसने पेशकारी कीथी कि तू आजकरने बैठा? नालायक! इसी लिये बाप बसाहे होके मरे, मा कहरते कहरते मरी तुमभी वैसेही मरोगे। कुत्ते भी तुझे न पूछेंगे। कौड़ीशेखी और तीनकाने! और तू जैसा है वैसा सारी दुनिया जानती है। बापने बहुतनौकर रखा था कि तू नौकर रखने चला है। बाप न मारी लोमड़ी बेटा तीरन्दाज! ऐसी दशा है तो नौकर के चलते राह राह जूता खाओगे।"

मैंने देखा कि जबतक इनके बदन में ताकत है तबतक न यह अपना बोलना बन्द करेंगे और न मेरी बातें सुनेंगे। इसलिये मैं चुप खड़ा होगया, मुन्शीजी की बातें सुनने लगा। जब बकते बकते लालाजी कुछ थके तब उनका बोलना कुछ रुका। पर इसके साथही आखिर में दो तीनबार नौकरका नाम लेने से मैंने समझ लिया कि इन्हें रमललवे ने कुछ कहा है।

यद्यपि मैं मुन्शीजी की तबीयत का हाल बखूबी जानता हूं, तौ भी मेरी यह ख्वाहिश नहीं है कि मेरा नौकर भी किसी तरह से उनके साथ पेश आवे। इसलिये मैंने तुरत रमललवे को बुलालिया और डपटकर पूछा "क्यों रे! क्या बात हुई है।"

रमललवा सिर झुकाये चुप रहा।

मुन्शीजी ने उसे चुपहोते देखकर कहा "वह पाजी बोलेगा क्या? है तो शैतान का बच्चा। तुम्हारा नौकर समझ कर मैंने इसे छोड़ दिया, नहीं तो मारलातों के इसको मैं दुरुस्त करदेता। बड़—"

मैं। "अच्छा मुन्शीजी आप सवर कीजिये मैं इसे आप के सामनेही दुरुस्तकर देताहूं। क्यों रे बोलता क्यों नहीं? रमलल्वा!"

रमलल्वा। "सरकार!—"

मुन्शीजी। "सरकार का नाती बना है, एक सरकार तो अंगरेज बहादुरहै, दूसरा सरकार कौन लुचाहै रे! पाजीकाजना! सचसच बातकह नहीं तो अभी मारलातों के दुरुस्त करूंगा।"

मुन्शीजी नें इतना कहकर अपना दहना पांव जमीनपरबड़े जोर से पटका, गोया दुरुस्त करने के तदबीर का नमूना दिया। और इसके साथही उन्हों ने दहना हाथ रमलल्वाकी ओर बढ़ा कर कान ऐंठने की मुद्रा इस तरह से बताई कि रमलल्वे के चेहरेपर जरासी हँसी आगई। सो देखतेही मुन्शीजी और आग होगये।

"हँसताहै क्यारे? मैं क्या बौड़हा बकलेल हूं? मैं समझ गया, समझगया, यह सब झगड़ा तुम्हारेही इशारे से होताहै। जैसा तेरा खाविन्द पाजी है वैसा तें पाजी है। दोनों पाजी इकट्ठे हुये हो। तो एकबात समझ रखते जावो—अगर मुझे गुस्सा दिलाओगे तो दोनों को मैं मारलातों के दुरुस्त करदूंगा। हँसी! हँसी! बड़े बड़े हँसी करनेवालोंको मैंने एक घड़ी में मारलातों के दुरुस्त करदिया है और तुमलोग क्या माल में मालहो; मुझ से हँसी करने आयेहैं? अरे हँसीकर उससे जिसने तेरी—"

मैंने देखा कि अब यह बहुत बढ़ता जाताहै। ललककर रमलल्वे से कहा "क्यों रे रमलल्वा! हँसता क्याहै रे? मुन्शीजी का गोस्सा जानता नहीं, बात सीधे सीधे क्यों नहीं कहताहै?

रमलल्वा फिर उसी तौर से बोलने लगा" सरकार, हम एही जगह बैसल हउई पंचइती देखत रहली हँ। आ ओन्ने से मुन्शी ओजी देखे एलन—"

इतना सुनतेही मुन्शीजी चिल्ला उठे "हे! मैं पहिलेही कहे देता हूं। झूठी बात बोलेगा तो मैं मारलातोंके तुझे यहीं दुरुस्त

करदूंगा। पाजी कहीं का! में तो पहिलेही से देख रहाथा, अरे लुचा तूहीं तो पीछे आया था।—"

में। "मुन्शीजी बहुत ठीक कहते हैं। रमललवा! सची सची बात कह।

रमललवा। "सरकार, तब मुन्शीजी ऊठके गइलन, भज्जू से तीन चारबार कादो कहलन—

मुन्शीजी। "फिर झूठी बात, फिर झूठीबात! होजी झगड़ू में चिता देताहूं। इसे मारलातों के बिना दुरुस्त किये मैं नहीं छोडूंगा। क्यों रे पाजी मैंने भज्जू से कहा था कि गिरधरिया से?—"

मैं। "हां मुन्शीजी आपने गिरधरियेही से कहाहोगा, यह क्या कहेगा, हां, तब क्या हुआरे?"

रमललवा। "सरकार, ईतीन चारबेर कहलन, बांकी ऊ सुनब्बे न कइलस। तेही पर हम—तनिएक—"

मुन्शीजी। "अब बोल, बोलता क्यों नहींरे, पाजीकाजना पाजी, मारलातों के मैं तुझे दुरुस्त करूंगा, शैतान! मुझपर हँसी! मैं सब हँसी एक घड़ी में निकाल दूंगा।"

मुन्शीजीका गोस्सा फिर नया होगया। पांव स्थिर नहीं रहता था। इधरसे उधर और उधर से इधर चलने लगे। चिल्ला चिल्लाकर बोलने लगे हाथ पांव चमकाने लगे। दांत पीसने लगे।

मुझे इनके गोस्सेका कारण साफ़ मालूम होगया। भज्जूकुरमी की लड़की पर शुभा करके पंचोंने उसे पकड़ा था, उसीकी पंचाइती होती थी। मुन्शीजी भी पंच बनने गये, पर इनकी किसीने नहीं सुनी। इसीपर रमललवेंने हँस दिया था। बात तो कुछ नहींथी, पर इनका गोस्साभी तो ठंढा करना बहुत जरूरथा।

बड़े गम्भीर भाव से मैंने मुन्शीजीका हाथ पकड़ लिया और कोई छिपी बात कहने की तरह उनसे कहा "आप जरा

इधर आइये।" मुन्शीजी मेरे साथ एक किनारे आये।

मैंने बहुत धीरे धीरे कहा। "यह बड़ा पाजी है। आज कल का जमाना जैसाहै सो आप जानतेही हैं। कहिये इसमें मैं क्या करूं।"

मुन्शीजी (रंजहोकर, पर धीरे) "करोगे क्या? मार लातों के अभी दुरुस्त करदो।"

मैं। "और अगर आप पर फौजदारी करदे?"

अब तो मुन्शी जी बड़े सोच में पड़ गये, गोया फौजदारी दायरही होगई।

मैं। "एक बात सुनिये। मैं इसे जवाब देदेताहूं।"

फौजदारी से बचनेका यही एक मौक़ा देखकर मुन्शीजी बोले "खूब कहते हो।"

जरा आँख दबाकर रमलल्वे से मैंने कहा "अरे! तू अपने घरजा मुझे तेरी जरूरत नहीं।" रमलल्वा उस समय वहां से हटगया। मुन्शीजी खुश होगये।

दूसरा खण्ड ॥

दोनों बहन ॥

पहिला अध्याय ॥ ×

महावारुणी के अवसरपर गत वर्ष जितने लोग गङ्गा-स्नान करनेके लिये हरिद्वार गये थे उन्हे सत्काल विनकी बदौलत बहुत तकलीफ हुई थी; परन्तु मेरेलिये "मनचंगा कठौती में गङ्गा" हुई; जो कुछ होना था घर वैठेही होगया-सो हुआ किस की वदौलत?--दोनों वहनों की वदौलत। ये दोनों मेरी बहन नहीं है-मेरे सालेकी हैं।

स्नान के दो दिन पहिलेही, अर्थात् परसों स्नान होगा, तो आजही-शाम को मैं जब कचहरी से लौटा तो हस्बमामूल कपड़े बदलने को बराबर भीतर आँगनही में चलागया। घरमें जाकर ज्योंही चादर खूंटीपर लटकाकर चपकन उतार रहाथा, कि बाहर से पांवजेबकी झुन झुन मधुरधुन कानोंमें आई। मिजाज तो एक दम सन्न होगया। हँसिये मत, पांवजेबकी आवाज से मेरे घवड़ाने के कई वजह हैं।

ब्राह्मण होने परभी मैं पुराने खित्तेका चण्डूल नहीं हूं, अङ्गरेजी में अच्छी लियाकत हासिल करने पर भी मैं आचमनादि से कफ पित्त वायुका नाश नहीं करताहूं; और कलकत्ते में रहने परभी रविवारको आँख मूदकर निराकार ब्रह्मदेवका ध्यान नहीं लगाताहूं। मैं अपने को पका हिन्दू-पर समाज-संस्कार समझता हूं। इसी परिष्कृत बुद्धि के कारण मैं स्त्री-शिक्षा आदि

× हिन्दी—बंगवासी ता० २७ वीं फेब्रूअर सन् १८९३ ई० ॥

से प्रेम रखता हूं । अब आप लोग समझ गये होंगे, कि मेरी मनमोहनी सुकुमारी अर्द्धाङ्गिनी अन्ततः हिन्दी-विद्या में पूर्ण पण्डिता होगी। सच पूछिये तो हिन्दी लिखने पढ़ने में वह बहुत ही होशियार है,और समाचार-पत्र पढ़ने का मुझसे भी अधिक शौक रखती है—(लेकिन सम्पादक साहब ! इसबार का हिन्दी-बङ्गवासी उसके पते से मत भेजना; मैं इसबार आपका पत्र उसके हाथ में नहीं देखा चाहता, वजह आप खुद समझजाइये)।

खैर, लिखने पढ़ने के कारण उसकी बुद्धिभी परिष्कृत होगई है। वह भी अपनी राय बहुतसी बातों में बहुतही पक्की रखती है। उनमें से आज एकही का जिक्र करूंगा । वह कहती है कि हमेशा पांवजेब पहने रहना और झनझन आवाज गूंजाते रहना असभ्यता है । मैंने तजरबेसे समझा है, कि जब वह अपनी राय स्पष्ट रूपसे जाहिर करती है, तब मुझे अपनी राय भूल ही जाने में कुशल होती है। सो मैंने उसे पांवजेब हमेशे पहने रहने के लिये जिद भी नहीं किया; एक हीराकाट कड़ा और बनवादिया और वह उसेही दिनरात पहने रहती है। तब आज उसने पांवजेब क्यों पहना ?

जेठके महीने में धूप कड़ी होनेसे लोग ज्यादे पानीकी उम्मेद करते हैं; समुद्री हवाकी चाल देखकर सरकारी मेटरोलोजिष्ट बरसात का आगमन बताते हैं; सब ही लोग बादेनुमा देखकर हवाका रुख जानतेहैं; पर मैं दूसरे ही चिह्नों से अपने घराऊ मौसिमका रंग ढंग गम लेता हूं । पांवजेबकी आवाज सुन कर इसी लिये मैं घबड़ा गया । आने वाली आपत्ति की आशङ्का होने लगी।

आशङ्का शीघ्र ही दृढ़ हो गई । ठुमुक ठुमुक चालके साथ प्रेममयी तुरत ही घरमें आगई। आज रंगीन सारी घड़ी २ छोटी होती जाती है और सब अङ्ग छन छन कढ़ जाते हैं । प्रत्येक सेकण्ड में सैकड़ोंबार आंचल सम्भाला जाता है, घूंघट गिराया

जाता है, दामन समेटा जाताहै; पर ठिकाने एक भी नहीं रहने चाहता है; घूंघट सरक ही जाता, आंचल उघर ही जाता और दामन फलक ही जाता है। एक एक कोशिश बेफायदा होने पर एक एक बार लज्जा से मुह नीचे हो जाता है और थोड़ी मुसकुराहट लबोंपर आ जाती है; यह मुसकुराहट समुद्रकी तरङ्ग के समान समूचे बदन में फैल जाती है, समूचा बदन हँसनेलगता है। पहिलेही कहा है, प्रत्येक सेकेण्डमें यह लीला सौ सौ बार होती है। चौकठसे दोही हाथ पर मैं खड़ा था; पर इतनीही दूर आनेमें पांवजेबवाली परेशान होगई। लाचार होकर आंचल आधा उघराही, घूंघट आधा उठा ही और दामन कुछ फलका ही छोड़ना पड़ा। आगे मेरी चादर उस खूंटीपरसे उठा ली गई। "यहां तो मिट्टी न पड़ेगी!" कहकर दूसरी खूंटीपर लटका दी गई।

ऐसा न समझिये, कि मैंने बेवकूफीसे चादर उस खूंटीपर रखी थी। सब दिन उसी खूंटीपर चादर रखी जाती थी। वहां मिट्टी गिरनेका कुछ भी भय नहीं था; परन्तु आज मेरे घरमें मामला ही दूसरा था; इस लिये सब कुछ होना सम्भव था। और रोज कपड़े उतारकर जरूरी कामों से फरागत होलेनेके बाद चिराग बत्तीका वक्त हो जाने पर जलपान करने के समय चन्द्राननका दर्शन होताथा। द्विरागमन होने के सात आठ दिन बादसे घूंघटका घटाटोप उस मुखचन्द्रको कभी नहीं छिपाने पाता था। पर आजकी बातही कुछ और थी। घड़ी दिन रहतेही चन्द्रमा दीख पड़ा, और सोभी घनपटलकी आड़से।

खैर चपकन उतारने में मुझे बड़ी सहायता मिली। कमीजके ब्रेष्ठ और कफपर कुछ मुड़क नहीं पड़ने पाया। परन्तु आज पतिभक्तिकी अनुपम उपमा जूता तथा पायजामा उतारने के वक्त मालूम हुई। झलाबोर बेलदार चूनरीके परदेसे आधी चूरी छिपी हुई—(सिर्फ एक दो चूरी तथा कंगना और पहुंची देख पड़ती

थी)—रहनेपर अगनित अंगूठियों से सजीहुई उंगलीवाला गोरा सुकुमार हाथ पैरपर पड़ने से मालूम होता था, मानो स्वर्ग जानेका समय आगया।

ऐसा न समझिये, कि इतनी देर तक हमलोग चुपचाप काम करते थे। मैं इस समय लिखने को भूल गया, परन्तु मेरी प्यारी उस समय कहनेको नहीं भूली थी। आज इतने ही समयमें दुनिया भरकी बातें हो गईं; हर एक पर मुसकुराहट, हँसी और आनन्द का प्रवाह बह चला; परन्तु मुझे साफ मालूम होता था, कि अभी तक वह असली बात नहीं जाहिर हुई है। उसके लिये भी मुझे बहुत विलम्ब करना नहीं पड़ा। जब कपड़े बदलकर मैं खड़ा हुआ और फिर बाहर जानेको तयार हुआ, तब मेरा कठोर दहिना हाथ दो सुकुमार हाथोंके दरमियान दबने लगा। फिर मालूम हुआ, कि बांहपर कोई भारी चीज पड़गई (क़सूर माफ हो एक हलकी चीज—फूलके समान)। आगे वह बिलकुल भार कन्धेपर चला आया और मुहके पास किसी ने मीठी रसीली और नाज से भरी नाक की आवाज से कहा—“अँह, अभी न बाहरसे आयेहैं!” इस बरतका मैंने क्या उत्तरदिया सो मैं लिख नहीं सक्ता—अश्लील हो जायगा। जो पाठक अपने सिर्फ आधे शरीर के मालिक हैं वे स्वयं समझ लें।

एक काली—स्थानमें मैंने देखाथा, कि बकरोंकी इतनी कसरत हुई थी, कि उनकी यथोचित पूजा आदि होनी असम्भव होगई थी। बकरों के आगे फूल रख दिया जाता था और जब वे फूल खानेको शिर नीचे करते थे, तब ऊपर से खड्ग उनकी गरदनपर गिरता था। आज जब ऊपर कहा हुआ अन्तिम वाक्य मेरे मुहके सामने कहा गया तब मैंने समझ लिया कि यह वही फूल है और उसका जवाब देकर मैंने समझा कि मैंने फूल खा लिया। खड्ग गिरने में भी देरी नहीं हुई। मेरा जवाब पाते

ही उसने हँसकर कहा "एक बात सुनी है।" मैंने कहा "नहीं तो"। उसने कहा "चम्पा आती है।"

सुनतेही तो मेरा होश उड़गया। अकेली इस बोली की खुशबूसे तो मेरी सब दशा हो रही थी, अब इसकी छोटी बहन चम्पा भी पहुंचेगी। भगवान ही रक्षाकरें। तो भी मुझे हँसते हँसते कहना पड़ा, "कब आवेगी?"

उसने। कल सुबहको

मैंने। सो है क्या?

उसमें। आपको कुछ खर्च न पड़ेगा, कि इतना घबड़ा रहे हैं। वह कल आवेगी, परसों गङ्गा स्नान करके चली जायगी। आप से कुछ लेगी नहीं।

मैं अपना कलेजा बज्र समान करके और बड़ी कोशिश से मुहपर हँसी लाके यह कहता कहता बाहर चला आया, "आके रह जाय तो मुझे भी फायदा हो।" जब तक इसका जवाब वह दे, तब तक मैं निकल कर बाहर चला आया; तो भी सुन "ऊह! उस छोटी बच्ची से भी हँसी।"

और कहांतक कहूं, दूसरे दिन एक घण्टा दिन चढ़े चम्पा बीबी सांगीदार गाड़ी पर (मझोली नहीं) हमारे यहां पहुंचीं।

दूसरा अध्याय॥×

चम्पा बीबी मेरे घरपर पहुंची घण्टाही दिन चढ़े, परन्तु वह घण्टा मेरेलिये और मेरी स्त्रीके लिये युगके समान बीता। मेरी स्त्रीको तो उसकी इन्तजारी से, परन्तु मुझे मेरी स्त्री की बेसब्री से। "देखिये तो, चम्पा अभीतक नहीं पहुंची;" "मालूम, रास्ते में कुछ होगया;" "नीके नीके पहुंचे तब जानें" "जरा किसी को आगे भेजिये तो;" इत्यादि हजारों लाखों प्रश्न मुझ से पूछे गये; प्रत्येक का यथोचित उत्तर मुझे देना पड़ा और प्रत्येक प्रश्न

× हिन्दी—बंगवासी ता० ६ वीं मार्च सन् १८९३ ई०॥

के साथ अपना मुह बनाकर शोक प्रकट करना पड़ा। अगर मैं इसप्रकार अपना शोक प्रकट करने में कुछ कोताही करता, तो अवश्यही अपनी प्यारी के कोमल कण्ठ से कठोर शब्द निकलते सुनता और सुकुमार आंखोंसे जल प्रवाह बहते देखता। किन्तु भोरही भोर राम नाम लेने के समय उन घटनाओं को देखना सुनना मुझे पसन्द नहीं था।

चम्पाकी उमर चौदह बरस की; पर चेहरा चौंतीस बरसवाली का है। अपने बापके बुढ़ापे में (उसकी माको बुढ़ी कहने का मुझे साहस नहीं होता; मेरी स्त्रीकी मा आजकल सिर्फ साठ बरसकी नौजवान हैं) जन्म लेना ही इस असामान्य शारीरिक लक्षण का कारण बताया गया है। सो जो कुछ हो, पर चम्पा अपने भाई बहनों में सबसे छोटी रहने पर भी सबसे बढ़कर होशियार और सुन्दरी समझी जाती है। चम्पा के ग्यारहवें वर्ष में मेरे ससुर साहबका राही होनाही उसके इतने दिनोंतक कुँवरी बने रहने का कारण है।

दोनों बहनों का मिलना, आपसमें हँसना, बोलना इत्यादि विषयोंका उल्लेख करने का आज अवसर नहीं है। मेरे शिर जो कुछ बीती आज वही सुनिये। ज्योंही आंगन में पहुंचा कि सामने के ओसारे से चम्पा मेरी ओर दौड़ी और जवाब पाने की इन्तजारी न रखकर धड़ाधड़ मुझसे अनेक प्रश्न कर गई। चम्पा अपनी बहनसे इसी बातमें नहीं मिलती थी। "जीजा! मैं आ गई;" तुम "अच्छे तो थे," "आह,कितने दिनोंपर तुम मिले हो," "माने तुम्हें बुलाया है," "तुम न जाने मेरे घर काहे न जाते हो," "दीदी को मैं अपने शामिल ही घर लिये जाऊँगी," ये ही चम्पा के प्रश्नों के नमूने हैं।

मेरे पास पहुंचकर चम्पा बोली "जीजा! मैं और दीदी तो कल गङ्गा जाऊँगी, तुमभी चलोगे?" मैंने जवाब दिया, "हम लोगों को छुट्टी कहां, आइन्दे साल बूझा जायगा।"

चम्पा। दीदी जायगी और तुम नहीं जाओगे ? न, तुम भी चलो, बड़ा अच्छा होगा, सब आदमी मिलजुलके जायँगे।

मैं। अच्छा आज रात भर तो यहीं मिलके रहना होगा। कल न जाना होगा! तो बूझाजायगा।

चम्पा। जाह! मैं तुमसे नहीं बोलूंगी; दीदी! इनकी बात सुनती हो?"

चम्पा जितनी दौड़तीही आई थी, उतनीही दौड़ती लौटगई और अपनी बहनके कानमें कुछ कहकर एक बार मेरी ओर तेज नजर से देखती हुई हँसते २ घरमें चली गई। चम्पाके गायब हो जाने के बाद मैंने अपनी श्रीमतीकी ओर देखा। उस वक्त उसका चेहरा देखकर बड़े बड़े सोचनेवालों की अक़ल ठिकाने लगजाती। भौंह कुछ चढ़े, पर टेढ़े नहीं; आंखें नीचेको झुकी, पर रूखी नहीं; लिलार तीन चिह्नों से अंकित और सारी के घूंघट से ढकी। मुझे मालूम हुआ कि मनमोहनी किसी गम्भीर समस्या के सोचमें डूबी है। उसके स्वभाव से परिचित रहने के कारण मुझे यह भी मालूम होगया, कि इस समय कुछ भला बुरा सुनही लेने में मेरा कल्याण होगा, सो पासही के घरमें चुपके चलागया। श्रीमती भी दबे पांव वहां शीघ्रही पहुँची।

घरमें पैर देनेके साथ उसने बड़ा भय नाट्य करके कहा "कहीं चम्पा न यहां आ जाय"। फिर पीछे देखकर कुछ मेरे समीप आई और धीरे बोली, एकही पालकी मँगाइये, हम दोनों उसी में चली जायँगी पर ओहार अच्छा हो" । चम्पाके साथ मेरी स्त्रीके भी स्नानको जानेकी बात मैंने कभी नहीं कही थी; पर अब उसको मना करने का मजाल नहीं था, सो मैंने भी वैसीही आवाजसे जवाब दिया " और जिस गाड़ीपर चढ़कर आई है" कहना समाप्त भी नहीं हुआ, कि वह आंखें टेढ़ी करके बोल उठी, पर धीरेही "'उस गाड़ीपर हम सब कैसे जायँगे? लोग क्या कहेंगे?"

मैं। "लेकिन-"

वह। "क्या लेकिन? मैं तो उस गाड़ी पर हरगिज न जाऊंगी।" घूंघट कुछ और नीचे कर लिया गया, एक कदम पीछे हटकर मुझसे फासला और बढ़ा लिया गया। मैं तो तब और भी नम्र होगया। एक कदम आगे बढ़के कहा "मेरे कहने का मतलब यहहै-"

वह (उसी तान से)। "मैं आपका सब मतलब समझतीहूं; जाइये मैं पैदलही जाऊंगी; क्या होगा? आपही को न लोग हँसेंगे, मुझे क्या?"

मैं। पालकी तो पहिलेही से ठीक है; कमखाप का ओहार भी मैं लाला बाबू से मँगनी कर चुका हूं।" मेरी इस बात की असर बिजली के समान हुई। घूंघट झट उठ गया। शिर ऊंचा हुआ। विकसित अधर पल्लवों के दरमेयान मोतीके समान दांत दीख पड़े। मैंने तो समझा; कि फिर वह आगे बढ़ेगी; पर नहीं, वहीं से बोली "और चम्पाके लिये कपड़े—" इसबार मैंने उसे बात पूरी न करने दी; अलगट कह बैठा, "सो सब चीज आज शाम को ठीक हो जायगी। घाट पर के खर्च वर्च के लिये एकसो रुपये का भी मैंने बन्दोवस्त कर लियाहै।" अब तो सब सुन वह खुश होगई; पहिली नाराजी का जरा सा भी चिह्न उसके मुहपर नहीं रहा। तब मैंने उसे औरभी खुश करने के अभिप्रायसे आगे बढ़कर अपना बायांहाथ उसके कन्धेपर रखा और कुछ झुककर दाहिना हाथ भी बढ़ाना चाहा कि वह फड़ककर चौकठ की तरफचलीगई। "उंह, चम्पा देख लेगी" इतना कहती हुई बाहर निकल गई।

इस वक्त तो मेरी रिहाई इतनेही से होगई! शाम को जब मैंने सब चीजें मौजूद करदी तब उन सबोंके दोष निकलने लगे। पालकी की बिनावट पुरानी थी; कमखाप के बूटे में लाली बहुत कमथी, सारीकी किनारी एकही काली धारी थी; सिन्दूर क-

लकतियाथा, धूपमें गुग्गुल कम था इत्यादि इत्यादि। कहना नहीं होगा, इनमें से एक एक भूलके लिये मुझे हजार हजार बातें सुननी पड़ी। एसी वाहियात चीजें किसीके घरमें नहीं रहती हैं, मैं निपट गँवारहूं, मैं अपनी स्त्रीको नहीं चाहताहूं; काम करने में मेरी तबीयत नहीं लगती है, मेरी स्त्री का भाग्य न मालूम कैसा है; मैं सौ उल्लुओं में एक उल्लूहूं; इत्यादि बातें मुझे उसी समय मालूम होगईं।

खैर रातको बारह बजे भोजन करने का मौका हुआ। सोने के लिये मैं हस्ब मामूल अपनी कोठरीमें गया तो उसे सूनापाया और पासही की कोठरी से दोनों बहनों की आवाज आई। मैंने समझ लिया कि आज जमावड़ा उधरही रहेगा। चम्पाको तमाम रात अकेली छोड़ देना उचित नहीं है। और गङ्गास्नान के पहिले पवित्रता आदिकी बात सोचता हुआ मैं सोने को लेटगया, किन्तु नींद काहेको आवे, दोनों बहन कभी बोलती थीं, कभी हँसती थीं, कभी गहने झनझनाती थीं बात खतम होजाने पर दो बजे से झूमर गाना शुरूहुआ—

गोरीना तोरो नेमुआ राजाजीका बाग,
गोरी ना तोरो नेमुआ राजाजीका बाग॥
इस नेमुएके दो रखवार—
इस नेमुएके दो रखवार,
गोरे फिरङ्गी औ काले सवार॥
गोरीना तोरो नेमुआ राजाजीका बाग॥

गीत अचानक बन्द होगया, झम्मसे मेरी छबीली मेरी कोठरी में आपहुंची, बोली; उठिये तो, उठिये तो, दैयारी दैया! उठिये तो उठिये तो, उसकी घबराहट देखकर मैं भी कुछ घबड़ा गया, पूछा "घबड़ाती काहे? डर क्याहे? बात तो कहो?" वह धीरे कांपती बोली, "चोर है चोर, जल्द उठिये।" मुझे तो बड़ा अचम्भा हुआ कि इस गप्पशप्प और गीत के मध्य चोर कैसे आ

सका; पर मेरी समझ किस कामकी ? चम्पाने खुद खरखुराहट सुनी थी। मुझे तीन बजे रातको बिछावनसे उठकर घरके बाहर जाना पड़ा; चारों ओर देख भालकर तब फिर पलङ्गपर जानेकी फुरसत मिली। गरज कि तमाम रात इसी में नींद नहीं आई।

मेरेघरसे सिर्फ एकही कोसपर गङ्गा जी बहती हैं, इसलिये बारहबजेतक वे स्नान करके लौट आईं। उनके लौटनेपर मालूम हुआ कि चम्पा बीबी थक गई हैं, सो वह कुछ बेहोश हैं, पर मैं उनके पास नहीं जासका। खुद जाकर वैद्य बुला लाया, पर इनकी भी अकल नाकिस ठहरी। चम्पाकी तबीयत खराब रहने से रातको मेरी स्त्री ने रसोई नहीं बनाई; बेयालुही से रात बिताना पड़ा, पर इस रातको भी पहिलेही रात की तरह मुझे नींद नहीं आसकी। दूसरे दिन चम्पाकी तबीयत कुछ अच्छी हुई।

मैं तो अपनी पतिव्रता तथा शिक्षिता स्त्रीकी सेवा शुश्रूषासे परेशान था, अब चम्पा के आजाने से मेरी मिट्टी और भी खराब होगई। दोहीदिनमें नाकपर दम पहुँच गया। दिल बहलाने के लिये तीसरे दिन दोपहर को मैं एक सभामें गया। यहां "बालविवाह और बहुविवाह" पर व्याख्यान था। वहां से लौटने पर मैं कुछ सोचता हुआ घर में बैठा था। उधर से मेरी स्त्री पहुँची। और अपने स्वभावानुसार बड़े हावभाव के साथ बोली "तो कल चम्पा जायही गी ?" मैंने मौका अच्छा जानकर बड़े आश्चर्य्य की नजरसे देखकर कहा "नहीं तो, अभी वह रहेगी न काहे।" मेरा आश्चर्य्य देखकर मेरी स्त्री घबरागई। ठिठक कर खड़ी रह गई, कुछ आगे बोल नहीं सकी। कोई बुरा काम करते वक्त पकड़े गये लड़के के समानशरमिंदा होकर सिर नीचे करके मैं चुप होगया। कुछ देर बाद फिर बोला "क्रिस्तानों से हम हिंदुओंहीका धर्म्म अच्छाहै।"

मेरी स्त्री। "सो क्या ?"

मैं। "और काहेको, एक बात यही देख न लो। क्रिस्तानों

को एकही समय दो स्त्री नहीं रहसक्की है; और हमलोग चाहें जितनी करें।"

मेरी स्त्री (मुँह लम्बा करके सिर हिलाके)। "हूं।"

मैं "और देखो, वे लोग अपनी साली से कभी व्याह नहीं कर सक्के हैं—

मेरी स्त्री (क्रोधसे)। और आप अपनी साली से व्याह कर सक्के हैं!

मैं (शरमिन्दा और घबड़ाकर) "ऊं, ऊं, सो-सो-मैं-ओः, ओः, मैं सो नहीं कहता हूं। पर तुम भी तो चम्पा को बहुत मानती हो।"

मेरी स्त्री इतना सुनते ही सिरसे पैरतक लाल होगई। दांत पीसकर बोली "मानने न मानने की कौन बात है? मैं तो आप से कहने आई थी कि वह कल जायगी।"

मैं "सुनो सुनो! दो चार दिन—"

मेरी स्त्री। "कुछ नहीं, कल उसे जाना ही होगा।"

दूसरे दिन सवेरे जब मैं सोकर उठा तो देखा कि चम्पा बीबी अपनी गाड़ीपर सवार होचुकी थी। अपनी इस रिहाईके लिये मैंने भगवान् को उस समय अनेक धन्यबाद दिया।

गोटादार चूंदरी।

पहिला अध्याय। *

सम्पादक महाशय! आप लोग आराम के साथ आफिस की कुर्सीपर बैठकर बिना तरद्दुद कलम उठाकर धड़ाधड़ आर्टिकल सड़र डालते हैं और शायद इसी से समझते हैं, कि आर्टि-

* हिन्दी—बङ्गवासी, ता० २३ वीं मार्च सन् १८९३ ई०॥

कल लिखना बहुत ही सहज बात है। लेकिन मेरेलिये यह काम किस कदर मुश्किल है सो आपने कभी नहीं खयाल किया होगा। कितनी तरद्दुद, कितनी परेशानी, कितनी मिहनत और जानें भगवान्! कितनी जानकनी, एक एक आर्टिकलके लिये मुझे सहनी पड़ती है सो बयान करने के लिये विधाताने मुझे शक्ति ही नहीं दी। ऐसा न समझिये, कि मैं आर्टिकल लिख नहीं सक्ता हूं वा विषय समझ नहीं सक्ता हूं—नहीं, मुझे तकलीफ दूसरे ही कारण से होती है। इस तकलीफ के कर्त्ता कोई दुश्मन नहीं हैं—इसकी आदि माता मेरी प्रेममयी अर्द्धाङ्गिनी ही हैं—पर न तो मैं और न कोई दूसरा पुरुष उस का आदि पिता कहा जा सक्ता है।

अब अगले ही दिनकी बात न सुनिये। आप को यादहोगा कि बृहस्पतिवार तक मेरा लेख नहीं पाने से शुक्र के दिन सुबही आपने तार भेजा था कि आज शामतक आर्टिकल जरूर डांक में छोड़दिया जाय। साहब, मैंने तो समझा था कि, उस दिन कचहरी तातील थी, इसलिये दो पहरको निराले में बैठकर लिख डालूंगा, पर भगवान् जो ऐसा होने दें! नसीब में तो लिखी थी दूसरी ही बात। मेरे दरवाजे के पास ही एक कुरमी का घर है। उसकी लड़की कहीं बदफेली में पकड़ी गई थी। उस की पञ्चायती भी आज ही होने वाली थी, दसही बजे से पञ्चलोग जुटने लगे। उनलोगों की कच कुच्च शुरू हुई। कहिये, तब दरवाजेपर बैठके लिखना मोभकिन था?

सो साहब, मैं आंगनही में कोठेपर बैठके लिखने को गया। वहां भी कोई जाके दिक न करे, इसी भयसे मैंने कोठे के किवाड़ की किल्ली लगाके बैठा। लेकिन इस तरहकी समझ सरासर गलत थी। जिसने, हजारों हड्डियों, नसों और कई सेर लोहू मांस से ढके मेरेहृदय में बआराम प्रवेश कर लिया है, जिसके मेरे घर में पहिले पहिल प्रवेश करते ही "मानो सुख दिख रावनी"

"सास सदन, मन ललन हूं,
सौतिन दियो सुहाग।"

उसमें यह सामान्य कोठा, सामान्य किल्ली के द्वारा कब तक बचा रह सक्ता है? मैंने कागजके एकपर्चे को भी लिख कर खतम नहीं किया था, कि किवाड़ में धक्का पड़ा, उस ओर कान लगाने से सुना "जरा खोलिये न।" मैंने तो पहिले चाहा कि उस धक्के की ओर कुछ ध्यान न दूं और अपना काम करता ही रहूं। पर किवाड़ इतने वेगसे हिलने लगा ढकाढककी आवाज इतनी तेजी से आने लगी, और "इह! तुरतही सो गये; नींद आ गई," "हा! ऐसा तो कहीं नहीं देखा था" इत्यादि तीखे वाक्य इतने जोरसे सुन पड़ने लगे कि मैंने समझा, कि अगर किवाड़ टूट न जाय तो भी बाहरही से लिखने के विघ्न यथेष्ट होते रहेंगे। सो मैंने लाचार होकर किल्ली खोल दी।

किवाड़ खुलते ही मेरी सर्वेश्वरी भीतर पैठी। एक पांव भीतर और एक पांव बाहर रख कर बोली "एह! आज न मालूम क्या है।" मैंने विचारा कि अगर मैं इस समय इस से जरा भी हँसके बातें करूंगा तो यह सब काम बन्द कर देगी, सो गम्भीर भावसे पेश आने से शायद यह मेरे काम करने में दस्तन्दाजी न करे तो अजब नहीं। बस, मैंने गम्भीर भाव से लिखना आरम्भ किया। परब्रह्म का ध्यान करने के समय श्रीशिव जी का भी चेहरा उतना गम्भीर नहीं हुआ होगा। नारद जी सब मुनियों में धुरन्धर समझे जाते हैं, परन्तु यदि वह भी मेरा चेहरा उस समय देखते तो मात हो जाते। किन्तु शिव जी हारें, नारद जी मात हों, सो सब कुछ हो; पर मेरी शाहजादी उस चेहरे को देखकर न हटी।

जिस बिछावन पर मैं बैठा था, उसी पर मेरी देंहमें कुछ कुछ सटकर बाईं ओर अपने बायें हाथ के ऊपर भार देकर वह इस तरह

से सो गई कि उसका पैर मेरे पीछे पड़ गया, उसका मुह मेरी ओर फिर हुआ मेरी जांघके पास आ गया और उसका दाहिना हाथ स्वतन्त्रता से कभी मेरी कमरकी चारोंओर और कभी सामने के कागजोंपर फिरने लगा।

मैंने समझा था कि मेरा गम्भीर चेहरा देखकर वह किवाड़ खुलने की देरीकी बात भूल जायगी और दो एक बात बोल चाल के फिर लौट जायगी। मैं कसम खाकर कह सकता हूं कि मैंने अपना भौंह इतना नीचे गिरा लिया था और अपनी पेशानी इतनी सुकड़ा ली थी कि अगर कोई मर्द वहां आता—वा कोई दूसरी स्त्री ही वहां आती—तो हरगिज मुझसे कुछ पूछने का साहस नहीं करती। किन्तु मेरी राजराजेश्वरी तो ऐसी वैसी नहीं है; किसी का डर भय उसके जीमें तो आ नहींसक्ता। सो रंग ढंगसे मैंने गम लिया कि किवाड़ खुलने की देरीकी बात तो वह भूल गई, पर मेरागम्भीरपन विना दूर किये वह शायद चलेगी नहीं। "दी हौं श्राप कि मारहौं जाई" ऐसी प्रतिज्ञा उसने की थी। मेरे गम्भीर चेहरेके नीचे कलेजा पारेके समान कांपने लगा॥

दहिने हाथ से मेरी कमर जोरसे भर पांजा पकड़कर और अपना सिर मेरी गोदमें रखकर मेरे मुहकी ओर ताकती हुई वह बड़ी ही मीठी आवाज से बोली "सो, आज है क्या?"

मैं लिखता ही रहा।

वह (मेरे बदन में और सटकर) "अं, जरासा बोलिये, अंम न—"

मैं साबिक बदस्तूर काम करता रहा। अब उसने अपने सिर के साथ आधा शरीरभी मेरी गोदमें रख दिया और दहिने हाथसे पीठ परहोके दहिना कन्धा थामके कुछ न कियाके नाजके साथ बोली "अब न, अब बोलिये, जरासा, तनिकसा, न, अंम न—"

मैंने देखा कि अगर अब भी मैं उसकी तरफ मुखातिब नहीं होऊंगा तो अवश्यही उसकी समूची देह मेरी गोदमें आ जायगी

और तब सबकाम नष्ट हो जायँगे। सो मैंने जरासा उसकी तरफ देखा। चार आंखें एक होतेही वह बड़ी प्रसन्नता प्रकट करने को हँस उठी। उस समय उसका चेहरा अगर आप देखते तो अवश्य ही कहते कि ऐसी पतिव्रता अनुरागिनी भोली स्त्री संसार में और कहीं नहीं मिलेगी; पर असली बात तो मैं ही जानता हूं कि वही जानती है।

मैंने अपना गम्भीर भाव ज्योंका त्यों रखकर "उठो, देखो बड़ा जरूरी काम कर रहा हूं, आज यह सब जाने दो।"

वह उठ पड़ी, पर मेरे शरीरसे अलग नहीं हुई। हँसकर बोली "कौन काम है?" मैं चुपही रहा।

जिस कागजपर मैं लिख रहाथा उसे हाथसे पकड़ के फिर बोली "यह कौन काम है?" मैंने देखा कि जवाब न देनेसे अब न बनेगा, कहा "यह एकजरूरी चीज लिखरहाहूं, दिक मत करो।"

वह "भला मैं काहेको दिक करूंगी, मैं तो सिर्फ एकही बात पूछतीहूं कि यह क्या लिखते हैं, और तो कुछ नहीं"

मैं (उसी भावसे) "एक आर्टिकल लिखताहूं।"

वह (मेरे पीठपर भार देकर) "आर्टिकल काहे को"

मैं। "हिन्दी-बङ्गवासी के लिये।"

वह। (आश्चर्य्यसे) "हिन्दी बङ्गवासी में? उसकी तो आप निन्दा न करते थे? बङ्गाली-हिन्दी उसीकी न कहते थे?"

सच पूछिये तो यह सब बात चीत लिखनेकी मेरी तबीयत नहीं है। पर क्या करूं सची बात न लिखूं तो झूठा ठहरूं। धर्म्मका मामला है। खैर, मैंने उस समय कुछ सकपकाकर उत्तर दिया "सो तो जब उन लोगोंने मेरा लेख नहीं छापा था, तब कहा था।"

वह (मेरे मुहके पास मुह लाकर) "अब वे सब छापेंगे।"

मैं (उसका मुह हटा कर) "हां छापेंगे; पर अब दिक मत करो, लिखने दो।"

वह। " एकही बात और कहिये तो मैं चुपरह जाऊंगी, कुछ भी नहीं पूछूंगी, कौन विषयपर लिखते हैं ?"

मैं। "और कुछतो नहीं पूछोगी ?"

वह। " नहीं, हरगिज नहीं।"

मैं।" 'समुद्र—यात्रा' पर"

वह। "समुद्र यात्रा क्या ?"

मैं। "फिर पूछा न।"

वह। "यही एक बात, और कुछ नहीं"

मैं।" सच कहो, और कुछ तो नहीं पूछोगी।"

वह। "आंख छूतीहूं, झूठ नहीं कहती हूं।"

मैं। "जहाजपर चढ़के समुद्रके पार विलायत जो लोग जाते हैं उन्हीं के बारे में।"

वह।" कौन विलायत जाताहै ? मैं (कुछ क्रोधसे) " मैं नहीं जानता, अब चुप रहो, बहुत दिक मत करो।"

मैंने समझा था कि वह रंज भी होकर अगर अब चलीजाय तो मैं आर्टिकल समाप्त कर सकूंगा, क्योंकि खुशी से वह जानेवाली नहीं थी और जबतक मेरे पास बैठीथी तबतक मारे प्रश्नों के कोई काम नहीं करने देती थी। पर वह काहेको चले। पहिले मेरे रूखे उत्तरपर चुपहोगई, फिर आंखें भरलाई। आगे, मेरेसामने कई कागजों पर पैररखके बैठगई और आंचल से मुह छिपाकर-सिसक सिसकके रोने लगी। मैंने साफ देख लिया कि आज आर्टिकल हरगिज नहीं समाप्त होगा।

दूसरा अध्याय। +

मेरी तो अक्ल ही हवा खाने चली गई। " भला, मैंने क्या बिगाड़ा है ? रंज होने की कौनसी बात कही है ? जरासा चुप

+ हिन्दी-बंगवासी, ता० २७ वीं मार्च सन् १८९६ ई०॥

रहनेको कहा, एक स्वालका जवाब नहीं दिया। इसीलिये इतना गोस्सा, इतना रोना? और अगर गोस्साही हुआ है, तो रोने की क्या जरूरत है?" येही सबबातें सोचता हुआ, उस सिसकती प्यारी चीजको सामने लिये मैं दो मिनट तक बैठा रहा। मैंने तब विचारा कि चुपचाप बैठे रहनेसे कुछ काम न चलेगा, पर कुछ करभी नहीं सक्ताथा।

पहिले तो मेरे जी में आया कि अपना कागज वागज लेकर दूसरी जगह चला जाऊं और उसे अपने दिलकी कसक मिटानेके लिये सिसकतीही छोड़ दूं। पर कागजकी तरफ निगाह करनेसे एकही पर्चेका आधाहिस्सा मेरी स्त्रीके पैरके नीचे नजर आया। देखते ही जी तो उड़गया कि जिनपर्चोंपर मैंने इतनी मिहनत और मुसीबत उठाके लिखाहै वे उसके पैर के नीचे फटे; बड़ी जल्दी से बोला "हं हं हं हं, कागज सब फटे कागज सब फटे" और एक हाथ से उसका पैर हटाने की और दूसरे हाथ से उस पर्चेको खींचलेने की कोशिश करके मैंने उसी तारमें कहा "जरासाहटो, जरासाहटो।" पर कौन हटती है। वह तो और जोर से सिसकने लगी। अब तो मुझे वधसा लगगया पर बड़े अवसरपर एक दुश्मनने दोस्तीकी। उसकागुन मैं कभी न भूलूंगा।

भिखारी राय नामका एक भिरभिराहा जाहिल शैतान मेरेघरसे दसही कदम पर रहता है। इसकी बिलकुल बातें मैं फिर कभी लिखूंगा, अभी इतना ही जान लेना आप लोगों के लिये बहुत होगा कि यह मुझे अपना दिली दुश्मन समझता है। इस वक्तका माजरा यह था कि भिखारी राय कुसमियों की पञ्चायती देख रहा था, सो मेरे नौकर ने उस की ओर ताक कर हँस दिया। भिखारी राय उसकी हँसी देखकर जल उठा; नाक भौं भाड़ता मेरे दरवाजे पर आया और उसका इल्जाम देनेके लिये मुझे पुकारने लगा "झगड़ूलाल हो होत" झगड़ूलाल हो होत!!"

मैंने उसकी आवाज सुनकर गौर किया कि लिखना पढ़ना तो ताक़पर गया ही, इस सिसकती सुकुमारी के सामने से इस समय जान बचे तो वही एक लाख। बस, भिखारीराय की चिल्लाहटका बहाना करके मैं वहां से कहता विदा हुआ "यह भिर्गी शैतान कहांसे पहुंचा।" दरवाजेपरके भिखारीको तो मैंने बाहर आकर किसी तरह तदवीरसे ठंढा किया, पर घरकी अधीश्वरीको प्रसन्न करना सहज बात न थी। सो मैं बाहर का बाहर ही रह गया। दो घण्टेके बाद जब घरलौटा तो दूसराही तमाशा देखा।

आँगन में जातेही देखा कि ओसारेके एक खम्भेमें सटी मेरी श्रीमती बैठी है। पर श्रीमती की सूरत ही बदली थी! कपड़ा बहुत ही मैला, सिरके बाल बिखरे, बदन में कोई जेवर नहीं, हाथों में सिर्फ एकही एक चूरी और नाक भौं आंख सबके सब गोस्सेसे तम तम करते हुए थे। जिस समय मेरा पैर आँगन में पड़ा उस समय वह दरवाजेही की ओर मुँह किये बैठी थी परन्तु मेरी सूरत देखतेही वह घिरनी की तरह घूमकर मेरी तरफ पीठ करके बैठी रही। मैंने समझ लिया गोस्सा शान्त नहीं हुआ है, आज भर पेट अन्न मिल सके तो गनीमत हो।

फिर मैं धीरे धीरे आगे बढ़ा। आँगन होकर सीधे उसी जगहपर पहुँचा जहां मेरी राधिका मान किये बैठीथी। सच पूछिये तो मुझे घराऊ झगड़े से इतनी नफरतहै कि अगर कन्धेपर बैठाने से वह खुश होती तो मैं सो भी करने को राजी होजाता, और क़सम खाताहूं कि अन्तर्द्धान नहीं होता। पर उसे तो मेरा कुछ भी पसन्द न था। ज्यों ही मैं उसके पास पहुँचा और चाहता था कि उसकी गरदन में लिपटकर उसके कानके पास मुँह लेजाकर माजरत करूं कि वह फड़कके उठ खड़ी हुई, बिजलीसी चमकके तीरकी तरह निकली और कुछ दूर आगे जाके गरजने लगी, पर मुझपर नहीं। गोस्सा तो मुझही पर था। परन्तु यह गरजना दाईपर होताथा। दाई मेरी बहुत ही अच्छी

और होशियार है, पर नसीबकी छोटी है; जब मैं कसूर करता हूं, तब सजा उसी को भोगनी पड़ती है। आँगनमें आने के समय मैंने दाईको नहीं देखाथा।

इस वक्त दो बजा था, कलेऊका अन्न पेटमें पचा भी न था, किन्तु तो भी मेरी मानिनीने तमकके उसे उस समय कहा "ऐसी वैसी, फलानी ढेगानी कहां की; अभी तक रसोई का बन्दोबस्त न कर सकी, पचास बार कहा है कि मेरे सिरमें दर्द है, सबेरे पकाचोकाके रखदूंगी, जिसके जी में आवेगा खालेगा। मैं तुम्हारी लौंडी हूं कि तुम्हारे बापकी लौंडीहूं कि तमाम रात बैठी रहूंगी ?"

दाई बिचारी तो घबड़ानी। बेकसूर गाली सुनकर कुछ अप्रसन्न सी भी हुई, परन्तु मेरे मौजूद रहनेके वजह से आहिस्ते से बोली "दुलहिन, अभी तो–"

उसकी बात उसके मुँहही में थी कि मेरी दुलहिन बोल उठी "बड़ी दुलहिन की नानी बनी हैं। दुलहिन; दुलहिन, 'दुलहिन। जो दुलहिन है उसे कह, मैं कैसी दुलहिन ? जाह, दूर हो, तेरा काम नहीं है, जिसने तुझे रखा है उसीका तरवा खरत्थी कर" इतना कह के वह झोंकसे बैठी, मानों आस्मानसे गिरपड़ी, परन्तु इस ढंग से बैठी कि हम दोनों कि तरफ उसका मुहँ न रहा।

जिस समय वह मेरे नजदीक से भागी थी उस समय से मैं भकू बना हुआ आश्चर्य्यके साथ उसकी कारवाइयां देखतारही खड़ा था। फिर जब वह दूसरी जगह बैठ गई तब मैंने देखा कि दाई फिर भी कुछ जवाब देनेकी तयारी में हैं। यह समझ कर कि इसका उत्तर जलती आग में आहुति हो पड़ेगा, मैंने अपना बायां हाथ उठा कर इशारे से दाईको चुप रहनेको कहा। दाई चुप रह गई। दो मिनट तक आँगन घर सब सन्नाटे से मालूम होने लगे।

मैंनेबखूबी समझ लिया कि दाईके माथें चढ़ाके ये बातें मुझेही कही गई हैं। परन्तु दाईके सामने कुछ कहना मेरे लिये एक दम बेमुनासिब था। सो जैसे कोई बात न हुई हो और सब कुछ मामूली ही तरहसे हो, ऐसा ही चेहरा करके मैं घरकी तरफ चला और जोरसे, उसे सुना कर कहा "जरा एक बात सुनो तो !" घरमें प्रवेश करने के समय मैंने आंख दबाके उसकी ओर देखा, मालूम हुआ वह खिरमिराके क्रोधसे कह रही है "हूं, अच्छा !" और इसके साथ ही अपना सर तीन चार बार नीचे ऊपर झुलाके कुछ और धसकके बैठगई।

मैं तो जानता ही था कि वह मेरे बुलाने से हरगिज न आवेगी। तौभी घरमें जाकर उसकी इन्तजारी में मैं कुछ देर बैठा रहा। आगे फिर पुकारके कहा "जरा सुन न जाओ, एक जरूरी बात है।" बाहरसे एक धीमी आवाज आई "बज्जर पड़े उस जरूरी बातपर" तबमैंने तजवीज किया कि ठंढे लोहेसे गर्मलोहा न कटा, अब "विषष्य विषमौषधम्" का प्रयोग करना जरूर है। सो मैंने भी क्रोध करके बड़े जोरसे पुकारा "दाई! दाई !!

बाहरसे दाई। "जी !"

मैं। "यहां सुनो "

दाई चौकठके पास आकर सर नीचे किये बोली "बाबा !

मैं [बड़ा क्रोध नाट्य करके] "जाओ सुन्दरलाल अपने दरवाजे पर बैठे हैं उनसे कहना कि बाबूने कहा है कि राय न ठहरी, सो गोटा सब वापस कर दें और अगर चूंदरी भी वह वापस ले तो वापस देदें और अगर वापस न ले तो चौबे जी को देदें और अगर चौबेजी भी न लें तो वह अपनेही पास रखें, मुझे उसकी जरूरत नहीं है।"

दाई "बहुत अच्छा" कहके चली, पर मुझे मालूम हुआ कि वह ओसारे से नीचे न उतरी। भला गोटा और चूंदरी कबतार कब तक सहा जांय। झट से मेरी प्राणेश्वरी सामने आगई। दबी

आंखों से मैंने देख लिया कि उसकी आंखें तो वैसीही हैं परन्तु लबोंपर कुछ हँसी आ पहुंची है। मैं उसकी तरफ़ कुछभी मुखातिब न हुआ। वह घर में आई, पहिले तो इधर उधर बेफ़ायदे घूमने लगी। कभी इस ताक परकी चीज़ोंको, कभी उस खूंटीपर के कपड़ों को देखने लगी। पर शीघ्रही धीरेसे बोली" काहेको बुलाया था।" इस वक्तकी आवाज से "बन्जर पड़े" वाली आवाज से जमीन आस्मान का फरक मालूम हुआ। पर मैंने कठोरताके साथ कहा " कामहोगया।" इतना सुनते ही वह झट से मेरेपास आगई और मेरे पीठपर हाथ रखके नाककी आवाज से नाज़ से साथ बोली " एंह ! काम होगया, झूठी बात।"

मैंने भी बदला लेने का यही मौका अच्छा समझा, कुछ उत्तर न दिया। अब तो मेरे पीठपर अपना पेट रखके गरदनमें गरदन सटाके उसने मुँह में मुँह इस तरह से मिलालिया कि अगर मैं उसे अपने दोनों बाज़ुओं में न पकड़ रखता तो वह ज़रूरही नीचे गिरजाती। तब वह काहेको माने, एक दम लिपटगई और बड़ी मुहब्बत के साथबोली "अं-अं,आपही 'न' पहिले रंजहुएथे।"

कहना न होगा गोटा और चूँदरी की कोई बात पहिले से न थी, सुन्दरलाल से उसदिन मुझे मुलाकात भी न हुई थी। परन्तु इस वक्त एक गोटादार चूँदरी ला देने का करार मुझे करना ही पड़ा और जब तक मैं चूंदरी न लाया था तब तक मैं घरमें निश्चिन्त बैठने भी न पाया था।

सम्पादक महाशय ! कहिये, आर्टिकल लिखने में हमलोगों को कितनी मिहनत, तरद्दुद, परेशानी और मुसीबत उठानी पड़ती है सो आपने अब समझा ? पर रुपया देने के वक्त आप इनबातों को खयाल रखें तब तो।

तीजव्रत ॥

पहिला अध्याय ॥ +

सम्पादक महाशय! आपके पाठकों में कोई कहताहै "भग-डूलाल अपनी स्त्री की तारीफ करना चाहता है;" कोई कहता होगा "बेवकूफ है, घर की बात लिखताहै"; और कोई कहता होगा "नही जी, झूठी बातें बनाके लिखता है, मशखरा है।" आपके ७ हजार ग्राहक हैं, सात हजार बातें कहते होंगे। और उन सबके सिरताज आपही ठहरे, आप भी एकाध हजार मतलब लगाते होंगे। मैं इतनी तरहकी आलोचना-समालोचना-का उत्तर दे नहीं सक्ता हूं, पर केवल इतना कह सक्ता हूं कि मैं एक हाथ में तुलसी तांबा और दूसरे हाथ में शालिग्रामकी चौकीलेके कंठतक गंगाजल में खड़ा होकर यह लिखरहा हूं कि मैं जो कुछ लिखता हूं, सब सही लिखताहूं। दिलमें कोई बात जकड़ी रहने से कोई रोकर आराम पाता है, कोई बिलाप करके आराम पाता है, पर मैं हिन्दी-बंगवासी के लिये लिखकर आराम पाताहूं। इस में अगर मैं एक अक्षर भी झूठ कहता होऊं, तो मुझे मेरी वही न काम आवे। कहिये इससे भी बढ़ के कोई कसम है? अगर इतने पर भी आप लोगों को विश्वास न हो, तो एक बार मेरेघर पर तशरीफ लाकर माजरा देख जाइये।

अब यही देखिये, बरसाइत आरही है। लोग कहते हैं कि हाथी ज्वरको दूर ही से देखकर मर जाता है। पर मैं इस बरसाइत को आते देख कर मनही मन हलाल होरहा हूं। जो तरद्दुद

+ हिन्दी बंगवासी ता० १६ वीं अप्रैल सन् १८९६ ई०

पितृ-श्राद्धके लिये उठानी नहीं पड़ती है वह बहुलाव्रत के लिये उठानी पड़ती है। दुर्गा पूजा और काली पूजामें मेरा खर्च ज्यादे होता है, परन्तु जो परेशानी मुझे भ्रातृ द्वितियाके लिये भोगनी पड़ती है, वह उनमें नहीं। और क्या कहूं, इस साल होली में मैंने बहुत तूलफजूल करके बड़ी धूमधाम की थी, किन्तु कुछ तरद्दुद नहीं मालूम हुई थी। पर यह वाहियात वरसाइत ज्यों ज्यों समीप आती जाती है, त्यों त्यों मेरेबदन का लोहू सूखा जाता है। लेकिन आफत लाने वाले सब तिहवारों का परनाना भादो सुदी तीजका तिहवारहै। इस में मेरी श्रीमती एकदिन एक रात निराहार रहती हैं। निराहार वह रह जाती हैं सही, पर उस की तकलीफ मुझे भोगनी पड़ती है-अवश्यही अतिशय प्रेम के कारण नहीं। अब परही सालकी बात सुनिये न।

सलोनी पूर्णिमा हुई थी सोमवार को उसके तीन चार दिन पहिले मैं कचहरी जाने के लिये घर में कपड़े पहन रहाथा, तो ओसारे पर दाई को बोलते सुना " दुलहिन ! इबरी सो मारे के सलोनी होइ ? " दुलहिन बोली " हां सुना तो है" और एक सेकेण्ड ठहरके भारी आवाज से बोलीं "सलोनी बीतते ही धम्म से तीज पहुंच जायगा।" मैंने उसी समय समझ लिया तिजारी ज्वरका पूर्व्वरूप आ पहुंचा।

सलोनी के दो दिन बाद मैं घरमें बैठा जन्माष्टमी के खर्चका हिसाब कर रहा था और मेरी दुलहिन नीचे चटाई पर बैठी पान लगा रही थी।

मैंने कहा "एक रुपया धनपत दुबेको भी देना होगा, उनकी इसमें हर सालकी मामूली हो गई है।"

इतना सुनते ही दुलहिनका सिर झट ऊपर उठा, चेहरा मेरी ओर फिरा, हाथ पनबट्टेमें गिर गया और जबान से निकल पड़ा "तो धनपतसे कह दीजियेगा कि इस बार तीज में सबेरे पूजा कराने आवें, उनके लिये बैठे बैठे हरसाल सांझ हो ही जातीहै।"

मैं। फिर दूधके लिये भी एक रुपया रखना चाहिये।

दुलहिन। तीजमें तो दूधकी जरूरत नहीं होगी।

मैं। नहीं, मैं जन्माष्टमी की बात कहता हूं।

दुलहिन। हां, सो तो मैं समझती हूं।

मैं। फिर कुछ कपड़े की भी जरूरत होगी।

दुलहिन। अच्छा याद पड़ा! तीजमें पहनने के लिये मुझे भी कोई कपड़ा नहीं है, एक ही बार दोनों लेते आइयेगा।

मैं। अच्छा तीजके लिये पीछे बूझा जायगा, अभी जन्माष्टमीका हिसाब तो करने देओ।

दुलहिन। मर। तीजको बाकी ही कितने दिन हैं कि बूझा जायगा? बुधेबुधे आठ बुध पन्द्रह बीफे सोलह, सोलही दिन न हैं?

मैं। सोलह दिन बहुत हैं।

दुलहिन (बड़ी जुर्रतसे)। आह! कहां सोलह दिन? आजका कौन, आज तो बीत ही गया; औ एक दिन होहीगी, बीचमें चौदही दिन न काम के हैं।

मैंने देखा कि अगर अब तीजके बारे में बात करता रहूंगा तो यह खुशी के साथ मेरा और सब काम नष्ट कर देगी। इसलिये बात फेर देनेके लिये कुछ हँस कर कहा "चौदह दिन तुम थोड़ा समझती हो? अरे काम तो चौदह मिनटमें तमाम होजायगा।"

सुनते ही चमक उठी। मुँह चिढ़ गया, भौं कुढ़ गई, पर आँखें और हँसने लगी। सिर नीचे करके बोली "जाइये, आपकी तो बात बातमें हँसी रहती है। कैसे किसीको अपने घरमें हँसी की जाती है।"

मैं खटियेपरसे उठ खड़ा हुआ। दरवाजे की तरफ मुखातिब होकर कहा "अच्छा अब जाताहूं किसी दूसरेही के घरमें हँसी करने।?

दुलहिन भी हँसके बोली "भला बिना पानकी हँसी कैसी होगी, पानले न लीजिये।"

मैं। लाओ सो भी करो।

दुलहिन पांच सात बीरी पान दहिने हाथमें लियेउठीं। मुझे बहुतसा पान घासकी तरह चबाना नापसन्दहै, सो कहा " ओह! उत्ता न लेंगे।"

दुलहिन। (चार पांच बीरी हाथसे गिराकर) अच्छा दो बीरी, दोही बीरी लीजिये।"

मैं। हां दो में क्या हर्ज है, वे दोनों तो मेरे हकहीके हैं।

दुलहिन हँसती हँसती मेरी ओर बढ़ीं। दोनों हाथ उठाकर मेरे पास आईं। मैंने दहिने हाथसे बीरियां ले लेनी चाही। पर दुलहिनने बायें बाजूको मेरी गरदनमें लपेटकर नाकसे बोलीं " न, मैं अपने हाथसे आपके मुँहमें रखदूंगी।

मैं। " नहीं, उन दोनोंको मेरे हाथहीमें देना मुनासिब है।

शायद यह बात सुनते ही मेरी प्राणेश्वरी बहुत रंज हुई मेरी गरदन जोरसे दबाके बोली " एह! " उसके जबानसे इतना निकलना था, कि उसके सिरपरका कपड़ा पीछेको गिर गया, समूचे बदनका बोझ मेरे कलेजेपर आगया और पान खानेको जो मैंने मुँह बढ़ाया, तो लबोंके बीचमें दूसरीही चीज पड़गई। खैर, पान भी पीछे मिला, परन्तु पान खाने के बाद भी यह सजा खड़ेही खड़े दो तीनबार सहनी पड़ी। परमैं ऐसा बेहया, कि इतने पर भी हँसताही बाहर निकला!

इन सब फरूआत बातोंसे आपको कहांतक दिक करूं, असली बात यह सुन लीजिये, कि जन्माष्टमी के बिहान ही मुझे तीन रुपयेका गेहूँ मँगाना पड़ा। आंगनमें गेहूँ के आतेही मेरी दुलहिनने दो रुपयेका गेहूं एक जगह और एक रुपयेका दूसरी जगह रखा। मैंने आश्चर्य्य के साथ पूछा "यह दो ढेर क्यों?"

दुलहिन (बड़े ढेरको दिखला कर)। यह पूजा ऊंजाके लियेहै।

मैं (छोटे ढेरको दिखला कर)। और यह?

दुलहिन (बड़े झोंकसे) आ सरगही न होती है?

मैं (कुछ विस्मित होकर)। ससगही के लायक गेहूं तो घर हीमें था, बजार से क्यों मँगाया गया।

दुलहिन (बड़े गम्भीर भावसे) सो मैं नई रीति काहे चलाऊं? जो हर साल हो आया है, सो इस साल भी हुआ है।

मैं चुप हो गया।

दूसरा अध्याय। +

"अक्लमन्दों के लिये एक हर्फ काफी है।" सो जो कुछ हो, पर मेरेलिये उसका एक जुमलाही काफी हुआ। उसने जब सिर नीचे करके गम्भीर भाव से कहा " मैं नई रीति काहे चलाऊं" तब मैंने समझ लिया कि अब कुछ मेरे कहने की जरूरत नहीं है।

शाम को जब मैं टहलने को निकला चाहता था तब उसने मेरे सामने आकर कहा "टहलने चले हैं?

उस समय उसका चेहरा बहुत क्षीण मालूम होता था, मुंह सुकड़कर छोटा सा होगया था, आंख डबडबानी मालूम होती थी और अगर दाई सामने ही आंगन में न रहती तो वह मेरी गोद में अवश्य गिर जाती और रोने लगती।

आप अगर किसी गरीब वस्त्रहीनको जोरसे एकचपत लगते देखिये तो समझियेगा कि मारने वाला बड़ा निष्ठुर है, परन्तु पोत वसूल करनेवाले तहसीलदार और पोतदेनेवाले काश्तकार एक चपत को कुछ समझते ही नहीं। मेरी श्रीमती के चेहरे का दर्शन सुनकर आप लोगों ने समझा होगा कि उसे कोई भारी

+ हिन्दीबंगवासी ना० २४ वीं अप्रैल सन् १८९३ ई० ॥

सदमा पहुंचीथी; परन्तु मैं उसका असल मतलब बखूबी जानता था, जवाब दिया "नहीं, जरा भवानी सहाय के यहां जानाहै।"

वह। "तो जरा उधरहीसे कपड़ा भी लेते आइयेगा, पहननेके लिये कुछ नहीं है, कैसे क्या करूंगी।" यह आवाज उसके कंठ से नहीं निकली, पेटसे; मुंह होके नहीं, नाक होके। मुझे बखूबी खयाल नहीं है कि आंख से आंसू भी गिरा था कि नहीं।

उसने जो कहा कि "पहनने के लिये कुछनहींहै" इससे आप लोग यह मतसमझिये कि वह मेरे सामने नग्न खड़ीथी,वा सचमुच उसको पहनने के लायक कोई अच्छा कपड़ा नहीं था। मैं अपनी धोती मोल लेता हूं उसकी सारी के कपड़े के साथ चपकन पायजामे का कपड़ा उसकी कुरती के कपड़े के साथ; टोपीका कपड़ा उसकी चोली के कपड़े साथ। मेरे कपड़ेका एकही बक्स सोभी आधा खाली पड़ा हुआ है; पर उसके कपड़े के दो बक्स भरपूर भरे हैं। तौ भी उसको "पहनने के लिये कुछ नहीं है"। कहिये इसमें मैं क्या कर सक्ताहूं?

"बहुत अच्छा" कहके मैंने वहां से उस समय चल दिया परन्तु उस रात कपड़ा नहीं आया। मेरे इस कसूर के लिये मेरी जो दशा हुई सो मैं क्या कहूं। पर दूसरे दिन कचहरी जाने के पहिलेही मैंने बढ़िये मलमल का एक अधगड़ मँगा दिया और बिलम्ब के पाप के लिये प्रायश्चित्त के तौरपर उसे झटपट धानी रंगवा दिया और बेलबांकुरी लगवाकर झलंबोर करके उसीदिन शाम को उसके हाथ में दिया।

यहां एकबात कहदेना उचितहै। अगर वह मुझे किसी किसी बात में अपनीही रायके अनुसार रखना चाहती है; तो औरसब

बातोंमें मेरी लौंड़ीकी तरहपर काम करती है; और उसकी इच्छा-नुसार कोई काम न होने से अगर मुझ से कुछ रंजहो जाती है, तो उसकी इच्छानुसार काम होजाने से खुशभी खबही होती है। जिसवक्त मैंने उस के हाथ में सारी दी उसवक्त उस के लबों का विकसित होना, और आंखों की चमक देखकर मेरेजीसे कलकी बातें एकदम जाती रहीं। जब उसने सिर जराहीसा उठाके टेढ़ी आंखकरके मेरी ओर जरासा देखा, तब मेरा मन कहां चलागया सो मुझे खबर न रही। और जब वह हँसती हुई, सारी लिये दोनों हाथसे मेरी गरदनमें लिपट गई तब मैं—

जाने दीजिये इन सब बातोंको, अब व्रतकी बात सुनिये कल व्रतहै तो आजही शाम को मैं जब कचहरी से लौटा तो भीतर ओसारेभर दो चूल्हे जलते हुये देखा। एकके पास मेरी श्रीमती और दूसरेके पास गिरधर की मा बैठीथीं, दोनों चूल्होंपर एकएक कड़ाही थी। मेरी स्त्री "छन" "छन" कर रही थी और गिर-धरकी मा "घ्योंप" "घ्योंप" कर रही थीं। मैंने इशारे से दा-ई को बुला के पूछा "क्या चीज पक रही है?" दाई बोली "दु-लहिन बरी पकावलिन आ गिरधर बौआ के माय कोहड़क तर-कारी भूंजलिन।" मैंने पूछा "सो है क्यों" दाई बोली "स-रगही।"

बरी और कोहड़ेकी तरकारी बननेमें कोई नवीनता नहीं थी, परन्तु शामही को रसोई के घरके बाहर दो चूल्हों का एक दम जलना और बाहरके लोगोंकी सहायतासे इनका बनना अवश्य ही सामान्य बात नहींथी। तयारी कुछ विशेष मालूम होतीथी। परन्तु दाईकी जबान से वह चार अक्षर और पांच मात्राओं का

शब्द सुनकर मैं चुप होगया। दाई चल चली मैंने आहिस्ते से कहा "जरा इधर भेजदे।" दाई चली गई।

घरसे देखा कि आंगन में जाके अन्य कोई चीज नहीं पाकर दाईने झाड़ू हाथमें लेके जोरसे कहा "आह! हे दुलहिन ईका भईल हदेखींत?" इतना सुनतेही मेरीदुलहिन और गिरवरकी मा दोनों दाईकी ओर देखने लगीं। पर गिरवरकीमा उसके हाथकी झाड़ू ही देखतीरही और मेरी दुलहिन ने झटसे उसके मुंहपर नजर किया। चार आंख होतेही, जिस घरमें मैं था उसकी ओर दाई ने इशारा किया। दुलहिन समझ गई; गिरवरकीमा झाड़ू देखके कुछ समझ न सकी। दुलहिन बोली, "तुम्हारी झाड़ू साड़ूके लिये भी मैंही देखनेवाली हूं;" और तब चूल्हेकी तरफ घूमकर इधरउधर कुछ खोज कर बोली "देखो तो एक चीज लातीहूँ तो एक चीज भूल आती हूं कटोरा उसी घर में छूट गया।" इतना कहके उठी और मेरेपास चली आई। बेचारी गिरवरकी मा यह सब खेल बेल कुछ न समझ सकी।

आतेही आहिस्ते से बोली "आज आप इधरही रहिये गिरवरकीमा आई हैं, मैं कैसे ठहरूं?"

मैं। तो जरा—

वह। दाई बजार से जलपान लादेतीहै:इधरही खालीजियेगा।

मैं। बजारसे मँगानेकी क्या जरूरत—

वह। आहिहो बा! ऊ जोसरगही के लिये पकताहै अभी कैसे जुठाइयेगा?

मैं। सरगही तो पूजा नहीं—

वह। भला कहिये तो! ऐसा भी कहीं हुआहै?

मैं जब तक कुछ जवाब दूं तब तक वह निकलके चलीजारही रही। एकघण्टेके बाद बजारसे दाई जल पानकी चीज ले आई। रातको भोजनके लिये सूखी रोटी और तरकारी मिली, दालका पता नहीं। बनावे कौन? दूध भी अच्छी तरहसे औटा नहींथा।

थोड़ी रात बाकी थी तब कच कुच सुनके नींद टूटी, मालूम हुआ सरगही हो रहीहै। थोड़ी देरके बाद श्रीमती घरमें आईं, पान लगाने लगीं, मैंनेकहा "अब तो सुबह हो गया।" वह "एह? हां? सुबह हो गया? अभी एक नींदका बेरहै।" मैं—"घर आंगन तो सब साफ दीसने लगे"—वह—"अब जो हो बिना पान खाये अन्न कैसे पचेगा" इतना कहके एक बीरी मुँहमें पड़ गई और बोली "अब जा[illegible] हूं सोने।" मैं—अच्छा तो सबेरे उठना, आज जल्द [illegible]ाय कि मैं नौबजे कचहरी जा सकूं।" वह [आसूदगीके साथ कहतीहुई और दूसरे बिछावन पर लेटती हुई] "अब आज रसोई को करे, सरगहीकी चीज बहुत बच गई है।" और कुछ ठहरके "सो क्या कल छुट्टी नहीं है?" मैं—"छुट्टी कैसी?" वह—"आ तीजकी" मैं "भला तीजमें क्याहै कि छुट्टी?" वह—"बज्जर पड़े कचहरी पर तीजमें छुट्टीभी नहीं।" मैं उठके बाहर चला आया, वह सोगई।

कचहरी जानेके वक्त देखा कि गिरवरकी मां फिर पहुँच गई हैं और पूजाकी चीजें पक रही हैं। वहांसे लौटके देखा कि धनपत हुवे पूजा करा रहे हैं और परदेकी उस तरफ मेरी अर्द्धांङ्गिनी पहन ओढ़के बनठनके पूजा कर रही है, पासही दाई और गिरवर की मां बैठीहैं। रातको रसोई कौन करे? मेरी दुलहिन तमाम दिन निराहार रही थीं। उनकी देहमें क्या ताकतथी? मुझे वही

सरनही की चीजें खानी पड़ीं–पूजाकी चीजें तो आज खानेको मनाहै न। तीजके दूसरे दिन सुबह को उठा तो देखा कि रसोई होगई थी, सरकारी जेवनार भी तमाम हो गया था, पूजा की चीजें बांटने को जाने के लिये दाई शिक्षा पा रही थी–" यह तीनों बेलीफूल के यहां देना।" दाई–"अच्छा"। वह–" हे! आ मुस्काके कहदेना कि यहहै सखी बहिनपा में, यहहै नाते में और यह है बैने में।"

इति॥